संतशिरोमणि सद्गुरु कबीर की विवेकधारा से अनुप्राणित

पारख प्रकाश

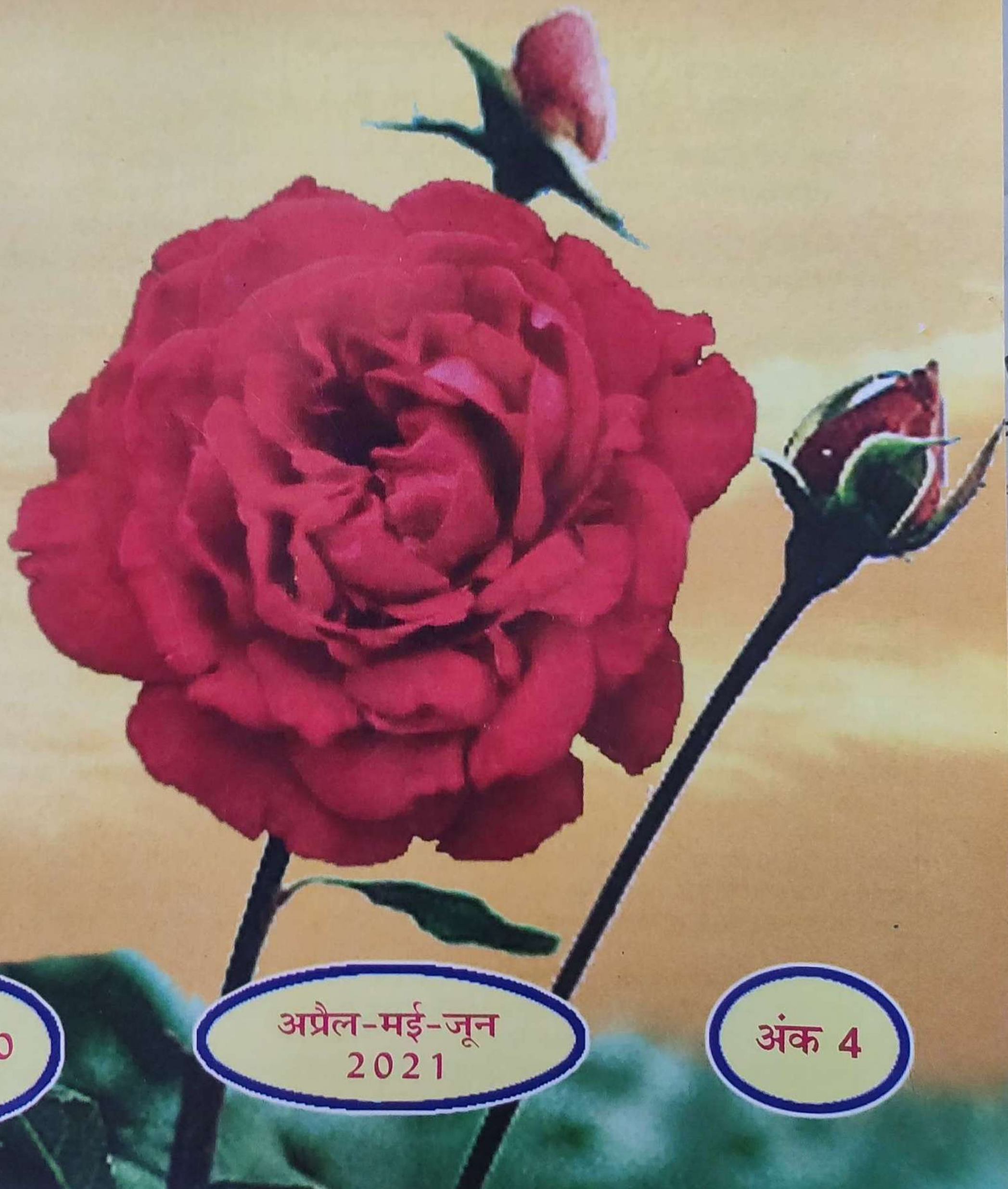

वर्ष 50

अप्रैल-मई-जून
2021

अंक 4

ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, एकता तथा मानव-धर्म-प्रेरक हिन्दी पत्रिका

प्रवर्तक
सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब
श्री कबीर मन्दिर, बड़हरा
पोस्ट—मद्दोबाजार
जिला—गोंडा, उ०प्र०

आदि संपादक
सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब

संपादक
धर्मेन्द्र दास

आदि व्यवस्थापक
प्रेम प्रकाश

मुद्रक एवं प्रकाशक
गुरुभूषण दास

पारख प्रकाश इंटरनेट पर
www.kabirparakh.com

वार्षिक शुल्क : 50.00
एक प्रति : 13.00
आजीवन सदस्यता शुल्क
1250.00

विषय-सूची

	लेखक	पृष्ठ
कविता		
बिनु सतगुरु नर फिरत भुलाना	सद्गुरु कबीर	1
सन्त पलटू साहेब की बाना	संत श्री पलटू साहेब	12
परम सुख शांति की बहार	जितेन्द्र दास	31
श्री निर्मल साहेब की वाणी	संत श्री निर्मल साहेब	43

स्तंभ

पारख प्रकाश / 2 व्यवहार वीथी / 13 परमार्थ पथ / 24
बीजक चिंतन / 32

लेख

जीवन प्रबंधन	अखिलेन्द्र दास	6
जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि	विवेकदास	15
सकारात्मक सोच	श्री शंकरलाल माहेश्वरी	22
कितने दिन जीना ठीक है?	धर्मेन्द्र दास	26
होनी	श्री भावसिंह हिरवानी	35
सुखी जीवन की चाबी	गुरुवेन्द्र दास	37
प्रतीकों में नहीं मनुष्य की सेवा	श्री सीताराम गुप्ता	42
मैं और मेरा स्वरूप		44

कहानी

इंसानियत	श्री विजय चितौरी	19

नम्र निवेदन

सन् 1971 में जब पारख प्रकाश का प्रकाशन शुरू हुआ था तब इसे स्थायी बनाने के लिए इसकी आजीवन सदस्यता प्रारंभ की गयी थी और उस समय इसका आजीवन सदस्यता शुल्क 100 रु. रखा गया था जो इस समय क्रमशः बढ़ते हुए 1250 रु. है।

प्रायः आजीवन सदस्यता 20 या 25 वर्ष की मानी जाती है, परंतु सद्गुरु कबीर के विचारों के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से हम अपने उन सभी ग्राहकों को पारख प्रकाश भेजते रहे हैं जो 30-40 वर्ष पूर्व आजीवन सदस्य बने थे। परंतु कागज की कीमत तथा प्रकाशन व्यय में लगातार वृद्धि होने के कारण अब उन ग्राहकों को पत्रिका भेजना कठिन हो रहा है जो 30-40 वर्ष पूर्व आजीवन सदस्य बने थे। अतः आजीवन ग्राहक नं. 1 से लेकर 1300 तक की पत्रिका मार्च 2021 के बाद बंद कर दी गयी है।

ग्राहक नं. 1 से 1300 तक के जो आजीवन सदस्य थे, यदि आप आगे भी पारख प्रकाश पढ़ना चाहते हैं और सद्गुरु कबीर साहेब के मानवतावादी विचारों के प्रचार-प्रसार में सहयोगी बने रहना चाहते हैं तो वर्तमान वार्षिक सदस्यता शुल्क 50 रु. या आजीवन सदस्यता शुल्क 1250 रु. मार्च 2021 तक अवश्य भिजवा दें। आप अपना सदस्यता शुल्क मनीआर्डर से या बैंक के माध्यम से भिजवा सकते हैं। बैंक का विवरण इस प्रकार है—

1. कबीर पारख संस्थान वास्ते पारख प्रकाश
   यूको बैंक, खाता नं. 19780100000003, IFSC Code : UCBA-0001978
2. कबीर पारख संस्थान-पारख प्रकाश विभाग
   यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया, खाता सं. 538702010001907, IFSC Code : UBIN 0553875

विशेष सूचना

प्रशिक्षण एवं अध्ययन कार्यक्रम

कबीर पारख संस्थान, प्रयागराज में जून 2021 से जून 2023 तक साधकों के लिए साधना प्रशिक्षण एवं अध्ययन कार्यक्रम संचालित किया जा रहा है जिसमें साधकों को बीजक अध्ययन, सामान्य हिन्दी व्याकरण, सामान्य अंग्रेजी, सामान्य विज्ञान, इतिहास-दर्शन एवं कम्प्यूटर का ज्ञान तथा प्रवचन प्रतिक्षण दिया जायेगा। समय-समय पर परीक्षा भी होती रहेगी।

20 वर्ष से 35 वर्ष के गृहस्थ-विरक्त साधक इस प्रशिक्षण शिविर एवं कार्यक्रम में भाग ले सकते हैं। उनके निवास-भोजन की व्यवस्था संस्थान की तरफ से निःशुल्क रहेगी। शिविर में सम्मिलित साधकों को संस्थान-आश्रम के नियमों का पालन करना होगा तथा संस्थान-आश्रम के दैनिक सेवा-कार्यों में समय-योग्यतानुसार सहयोग करना होगा।

इस शिविर में लगभग 20 साधकों के लिए ही सुविधा उपलब्ध रहेगी। इच्छुक साधक निम्न जानकारियों सहित आवेदन करें–

1. नाम 2. आयु 3. शैक्षिक योग्यता 4. अभिरुचि 5. पता

आवेदन निम्न ईमेल या ह्वाट्स-एप नं. पर प्रेषित करें,

1. Email. kabirparakh@yahoo.com
2. ह्वाट्स-एप, 9451059832, 9506907598, 9506927615
3. डाक का पता– कबीर पारख संस्थान, संत कबीर मार्ग, प्रीतम नगर प्रयागराज–21011, उत्तर प्रदेश

प्रशिक्षण एवं कार्यक्रम का प्रारंभ कबीर पारख संस्थान, प्रयागराज में 24 जून 2021 कबीर जयंती के शुभ अवसर पर होगा।

विशेष ध्यान शिविर

कबीर पारख संस्थान, प्रयागराज के तत्त्वावधान में निम्न स्थलों पर निम्नांकित तिथियों पर विशेष ध्यान शिविर का आयोजन किया जा रहा है—

26 मई से 30 मई , 2021	:	श्री कबीर पारख आश्रम, ग्रा.पो.–सणिया हेमाद, सूरत, गुजरात सम्पर्क : 09427153838, 09428868484
2 जून से 5 जून , 2021	:	श्री कबीर पारख आश्रम, धरमपुरी (डभोई), वडोदरा, गुजरात सम्पर्क : 09427849332
9 अगस्त से 15 अगस्त , 2021	:	श्री कबीर संस्थान, नवापारा (राजिम), रायपुर, छत्तीसगढ़ सम्पर्क : 09165283688, 06263782235
29 अगस्त से 4 सितंबर, 2021	:	कबीर पारख संस्थान, प्रीतमनगर, प्रयागराज सम्पर्क : 09451369965, 09451059832

उक्त ध्यान शिविरों में सीमित साधकों के लिए ही व्यवस्था रहेगी। अतः कोई भी साधक किसी भी शिविर में बिना पूर्व अनुमति के न आवें। जो साधक जहां के शिविर में भाग लेना चाहें, वहां के पते पर ही संपर्क करें, अन्य स्थल पर नहीं। जो साधक ध्यान शिविर के दौरान पूर्ण मौन पालन कर सकें तथा पूरी अवधि तक रुक सकें वे ही भाग लें। ध्यान शिविर में भाग लेने वालों का शहर, बाजार जाना वर्जित रहेगा।

R.N.I.'s Regd. No. 18528/71

Postal Regd. No. A.D. 253/2000

फार्म-4

'पारख प्रकाश' त्रैमासिक पत्र के संबंध में विवरण

1. प्रकाशन स्थल — प्रीतम नगर, प्रयागराज-211011
2. प्रकाशन अवधि — त्रैमासिक
3-4. मुद्रक/प्रकाशक का नाम — गुरुभूषण दास
राष्ट्रगत संबंध — भारतीय
पता — प्रीतम नगर, प्रयागराज-211011
5. संपादक का नाम — धर्मेन्द्र दास
राष्ट्रगत संबंध — भारतीय
पता — प्रीतम नगर, प्रयागराज-211011
6. समस्त पूंजी का स्वामी : कबीर पारख संस्थान
राष्ट्रगत संबंध — पंजीकृत सोसायटी
पता — प्रीतम नगर, प्रयागराज

मैं गुरुभूषण दास एतद्द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर लिखी बातें पूर्णतया सत्य हैं।

(कबीर पारख संस्थान के लिए)

दिनांक : 1-4-2021

गुरुभूषण दास
प्रकाशक

निवेदन

1. पारख प्रकाश प्रतिवर्ष जनवरी, अप्रैल, जुलाई एवं अक्टूबर में प्रकाशित होता है। यदि इन महीनों की आखिरी तारीख तक आपको अंक न मिले, तो इसकी शिकायत अवश्य भेजें, ताकि आपको दूसरी प्रति भेजी जा सके। देर से शिकायत मिलने पर दूसरी प्रति भेजने में हमें काफी असुविधा होती है।

2. आशा है यह पत्रिका आपके लिए रुचिकर, ज्ञानवर्धक एवं प्रेरणादायी सिद्ध हुई होगी तथा आगे भी आप इसके ग्राहक बने रहना पसन्द करेंगे और दूसरों को भी इसके ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करेंगे। इसे अधिक स्थायी तथा नियमित बनाने के लिए आप स्वयं इसके आजीवन ग्राहक तो बनें ही दूसरों को भी आजीवन ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करें।

3. यदि आपका शुल्क इस अंक के साथ समाप्त हो रहा है तो अगले अंक के लिए अपना शुल्क यथाशीघ्र भेज दें, जिससे अगला अंक आपको समय से मिल सके। पत्र तथा शुल्क भेजते समय अपना ग्राहक नं0 अवश्य लिखें।

एक प्रति 13 रुपये — वार्षिक 50 रुपये — आजीवन 1250 रुपये

लेख, कविता, सदस्यता-शुल्क भेजने तथा सब प्रकार के पत्र व्यवहार का पता

पारख प्रकाश
संत कबीर मार्ग, प्रीतमनगर
प्रयागराज–211011 (उ. प्र.)
Vist us : www.kabirparakh.com
E-mail : kabirparakh@yahoo. com

ग्राहक नं०

कबीर पारख संस्थान के लिए गुरुभूषण दास द्वारा प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस, प्रा. लि., पन्नालाल रोड, प्रयागराज से मुद्रित

सद्गुरवे नमः

को हिन्दू को तुरुक कहावै,
एक जिमी पर रहिये
—सन्त कबीर

शब्द है गाहक नहीं, वस्तु है महँगे मोल।
बिना दाम काम न आवै, फिरै सो डामाडोल॥ बीजक, साखी-326॥

वर्ष 50] प्रयागराज, चैत्र, वि. सं. 2078, अप्रैल 2021, सत्कबीराब्द 622 [अंक 4

बिनु सतगुरु नर फिरत भुलाना॥ टेक॥
केहरि सुत इक लाय गड़रिया, पाल पोस के कियो सयाना।
रहत अचेत फिरत अजयन संग, अपना हाल कछु नहिं जाना॥ 1॥
केहरि सुत इक आय जंगल से, देखत ताहि बहुत सकुचाना।
पकड़न भेद तुरत उन दीन्हा, आपन दशा देख मुसकाना॥ 2॥
मिरगा नाभि बसे कस्तूरी, वह मूरख ढूँढ़त चौगाना।
करत सोच पछतात मनहिं मन, यह सुगन्धी कहाँ से आना॥ 3॥
अर्ध उर्ध बिच डोरी लागी, रूप चखा नहिं जातबखाना।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, जाको सुर नर मुनि धरे ध्याना॥ 4॥

× × ×

बंदे जागो अब भई भोर॥ टेक॥
बहुतक सोये जनम सिराये, इहाँ नहीं कोइ तोर॥ 1॥
लोभ मोह हंकार तिरिसना, संग है लीन्हे चोर॥ 2॥
पछितावहुगे आदि अंत ले, जइहौ कवनी ओर॥ 3॥
बार-बार समझाय दिखाऊँ, कहा न माने मोर॥ 4॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, धृग जीवन जग तोर॥ 5॥

पारख प्रकाश

जन होइ हैं सो थीरा हो

सच्चा ज्ञान, मन की स्थिरता, निर्भयता और सुख की नींद सोना जीवन की बहुत बड़ी उपलब्धि है। इस उपलब्धि के सामने अन्य बड़ी-बड़ी उपलब्धियां नगण्य हैं। यदि मन अशांत एवं अस्थिर है, अनेक प्रकार की काल्पनिक हानियों को लेकर भयभीत है; भय, चिन्ता, तनाव के कारण नींद नहीं आ रही है, करवट बदलते रात व्यतीत हो रही है, तो सारी उपलब्धियां फिर किस काम की, जिनको पाने के लिए आदमी रात-दिन बेतहाशा भागा जा रहा है। इसके विपरीत यदि मन शांत-स्थिर है, निर्भय और आश्वस्त है तथा रात्रि में सुखदायी नींद आ रही है तो फिर कमी क्या है। याद रखें, रात्रि में सुखपूर्वक नींद उसे ही आयेगी जिसका मन निर्भय और आश्वस्त होगा। मन निर्भय तब होगा जब शांत-स्थिर होगा और मन शांत-स्थिर होगा सच्चा ज्ञान मिलने पर। सच्चा ज्ञान सच्चे संत और सच्चे लोगों की संगति से ही मिल सकता है अन्यत्र नहीं। सद्गुरु कबीर का यह कथन कितना सारगर्भित और सटीक है—

माँझ मँझरिया बसै सो जानै, जन होइ हैं सो थीरा हो।
निर्भय भये तहाँ गुरु की नगरिया, सुख सोवै दास कबीरा हो॥

(बीजक, कहरा 7)

सद्गुरु कबीर कहते हैं जो मांझ-मंझरिया अर्थात बीच में निवास करता है वही जानता है कि क्या सत्य है और क्या असत्य है, क्या आत्म है और क्या अनात्म है और वह स्थिर हो जाता है, उसका भटकना बंद हो जाता है। या मांझ-मंझरिया अर्थात हृदय बीच निवास करने वाले आत्मतत्त्व को जो जान लेता है वह स्थिर हो जाता है। वह अलग परमात्मा पाने के लिए भटकता नहीं है। जो सदैव गुरु की नगरी-सत्संग में निवास करता है, वह निर्भय हो जाता है और ऐसा भक्त या साधक सुखपूर्वक सोता है।

उक्त दो पंक्तियों में सद्गुरु कबीर एक साथ कई बातें बताते हैं और अध्यात्म के सारतत्त्व को खोलकर रख देते हैं। हम यहां एक-एक बात पर अलग-अलग विचार करें—

पहली बात यह है "मांझ-मंझरिया बसै सो जानै" अर्थात बीच में जो बसता है या बीच में जो बसा है उसको जो जानता है। मांझ-मंझरिया का अर्थ है बीच। यहां बीच के दो अर्थ हैं—एक है संतों के बीच और दूसरा है हृदय के बीच। जो संतों के बीच, संतों के संग-साथ रहता है और उनके साथ ज्ञानचर्चा करता है वही जानता है कि सत्य क्या है और असत्य क्या है, आत्म क्या है और अनात्म क्या है। जब उसे सत्य का, आत्मतत्त्व का ज्ञान हो जाता है तब वह स्थिर हो जाता है। क्योंकि सत्य तत्त्व को जानकर वह भ्रम-भूल, अंधविश्वास से मुक्त हो जाता है। उसके मन से सारी भ्रांति मिट जाती है।

भौतिक विद्या से भौतिक विषयों का ज्ञान हो जाता है परन्तु उससे न तो मन की भ्रांति दूर हो पाती है और न शोक-मोह मिटकर मन आश्वस्त, आत्मतृप्त-आत्मसंतुष्ट हो पाता है। भौतिक विद्या और भौतिक विषयों के ज्ञान की आवश्यकता से इंकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसी से भौतिक विकास होता है और जीवन निर्वाह में सुविधा मिलती है। परंतु कोई भी मनुष्य कितना भी भौतिक विद्या का ज्ञान प्राप्त कर ले इससे वह कभी शोक-मोह से मुक्त नहीं हो सकता और न उसके जीवन में स्थिरता आ सकती है। इसके लिए तो आत्मविद्या-अध्यात्मविद्या की आवश्यकता है।

इसी बात को समझाने के लिए छांदोग्य उपनिषद् में नारद और सनत्कुमार का लंबा उपाख्यान दिया गया है। वहां नारद सनत्कुमार से कहते हैं—भगवन! मैंने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और चौथा अथर्ववेद पढ़ लिया है। मैंने इतिहास-पुराण रूप पांचवां वेद भी पढ़ लिया है। वेदों का वेद व्याकरण मुझे याद है। इनके अतिरिक्त श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातज्ञान, निधिशास्त्र, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, देवविद्या (निरुक्त), ब्रह्मविद्या, भूतविद्या (भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र एवं प्राणिशास्त्र),

क्षत्रविद्या (शस्त्रविद्या), नक्षत्र विद्या (ज्योतिष), सर्पविद्या (विषज्ञान), नृत्य, संगीत शास्त्र मैंने पढ़ डाला है, परन्तु मैं शोक करता हूं। मैंने आप जैसे महापुरुषों से सुना है कि आत्मज्ञानी पुरुष शोक से पार हो जाता है—तरति शोकम् आत्मवित्। भगवन्! आप आत्मविद्या-आत्मज्ञान का उपदेश देकर मुझे शोक से पार कर दीजिये। लंबे व्याख्यान के अंत में जब सनत्कुमार ने नारद को आत्मज्ञान का उपदेश दिया तब नारद 'मृदित कषाय' अर्थात विकारमुक्त होकर आत्मसाक्षात्कार कर शोक से पार-मुक्त हो जाता है।

आदमी कहीं भी चला जाये संतों की संगति के बिना उसे आत्मज्ञान नहीं हो सकता। आत्मज्ञान तो दूर उसे जड़-चेतन की भिन्नता का ज्ञान भी नहीं हो सकता। वह यह भी नहीं जान पाता कि मानव जीवन की सफलता क्या है और किसमें है। वह पद, पैसा, प्रतिष्ठा और परिवार की वृद्धि-समृद्धि और छककर इंद्रिय-भोग भोगना ही जीवन लक्ष्य मानता है और इसी में जीवन की सफलता समझता है। परन्तु वह जीवन पर्यंत यह समझ नहीं पाता कि इनमें कहीं स्थायित्व, एकरसता एवं स्थिरता है ही नहीं। इसीलिए इन सबसे संपन्न होने के बाद भी जीवन पर्यंत भटकता रहता है। कहीं स्थिर नहीं हो पाता।

स्थिर होने के लिए जड़-चेतन की भिन्नता, जड़ से सर्वथा भिन्न चेतन का स्वतंत्र अस्तित्व, प्रकृति की कारण-कार्य व्यवस्था, विश्व के शाश्वत नियम, कर्म तथा कर्म-फल-भोग की व्यवस्था, वासना एवं कर्म-संस्कारानुसार जीव का आवागमन, जन्म-मरण, पुनर्जन्म तथा सुख-दुख की प्राप्ति आदि का ज्ञान चाहिए और यह ज्ञान संतों की संगति-सत्संग से ही मिलेगा, अन्यत्र नहीं। इसीलिए सद्गुरु कबीर कहते हैं—मांझ-मंझरिया बसै सो जाने। जो संतों की संगति में रहता है और विनम्रतापूर्वक सेवा-भक्ति करता है उसे ही सत्य तत्त्व का ज्ञान होता है और वह भटकना छोड़कर स्थिर हो जाता है। इसीलिए सभी संतों ने एक स्वर से सत्संग, साधु-संगति की महिमा बतायी है। सद्गुरु कबीर तो कहते ही हैं—संगति कीजै साधु की, संगति से सुख ऊपजै, कबीर संगति साधु की नितप्रति कीजै जाय आदि।

गोस्वामी तुलसीदास जी सत्संग की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि जतन जहां जो पाई।
सो जानब सत्संग प्रभाऊ। लोकहु बेद न आन उपाऊ॥

ऊपर "मांझ मंझरिया बसै सो जाने" का अर्थ किया गया है जो संतों के बीच, संतों की संगति में निवास करता है वही सत्यतत्त्व, सत्यज्ञान, प्रकृति की कारण-कार्य व्यवस्था तथा विश्व के शाश्वत नियमों को जानता है और जानकर सारे भ्रम, अंधविश्वास, मिथ्या महिमा, दैवीय कल्पना आदि से मुक्त होकर स्थिर हो जाता है। उसका भटकना बंद हो जाता है। इसको दूसरे ढंग से इस प्रकार समझ सकते हैं—मांझ-मंझरिया अर्थात हृदय बीच में जो बसता है उसको जो जानता है वह स्थिर हो जाता है। यह सहज समझा जा सकता है कि हृदय-बीच में कौन बसता है। हृदय-बीच में बसने वाले को ही जीव, चेतन, आत्मा, रूह, सोल आदि कहा जाता है।

सामान्य लोगों की बात कौन कहे अच्छे-अच्छे और बड़े-बड़े त्यागी, वैरागी, ज्ञानी, गुणी, संत, महात्मा भी ईश्वर, ब्रह्म, परमात्मा, खुदा, गॉड, सुख-शांति, कल्याण, मोक्ष आदि को बाहर से तीर्थ, मूर्ति, मंदिर, मस्जिद, लोक-लोकान्तर में पाने के लिए जिंदगी भर भटकते रह जाते हैं, परन्तु उनकी यह इच्छा कभी पूरी नहीं हो पाती। बहुत-कुछ त्याग-तप करने के बाद भी न उनका भटकाव दूर हो पाता है और न उनके जीवन में स्थिरता आ पाती है। यद्यपि शास्त्रों में यह बराबर कहा गया है कि ईश्वर, ब्रह्म, परमात्मा का निवास हृदय में है परन्तु लोगों को हृदय-निवासी पर विश्वास नहीं है। उन्हें विश्वास है लोक-लोकान्तर निवासी पर। इसमें कारण है पुराणों तथा महाकाव्यों में लिखी गयीं महिमा तथा अतिरंजनापूर्ण कहानियां। परंतु मनुष्य चाहे बाहर जितना भी भटक ले उसे बाहर ईश्वर-ब्रह्म-परमात्मा मिलने वाला नहीं है। जब भी मिलेगा हृदय में ही मिलेगा। जो वस्तु बाहर है ही नहीं, भीतर है, वह बाहर खोजने से कैसे मिलेगी। इसीलिए सद्गुरु कबीर को कहना पड़ा—

बस्तू अंतै खोजै अंतै, क्योंकर आवै हाथ।' 'घर की वस्तु निकट नहिं आवै, दियना बारि के ढूंढ़त अंधा।' 'घर में युक्ति मुक्ति घरहि में, जो गुरु अलख लखावै। घर में बसत वस्तु भी घर है, घर ही वस्तु मिलावै। खोज थके बहु दूर दूर तक, घट बीच आप समावै। कहत कबीर सुनो भाई साधो, ज्यों का त्यों ठहरावै।'

यहां घर का अर्थ है हृदय-अंतःकरण। इसी के लिए सद्गुरु कबीर 'मांझ-मंझरिया' कहते हैं। गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं—'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे अर्जुन तिष्ठति।' हे अर्जुन! ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय में स्थित है। और भी 'ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते। ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥ गीता 13/11॥ अर्थात (चेतन) ज्योतियों की भी ज्योति है और अंधकार से परे कहा जाता है। वह ज्ञानस्वरूप जानने योग्य तथा ज्ञान द्वारा प्राप्त है—वह सबके हृदय में स्थित है। कठोपनिषद् में नचिकेता को समझाते हुए यमाचार्य कहते हैं—अंतःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो। वह ज्योतिर्मय प्रकाशस्वरूप (चेतन, आत्मा) शरीर के अंदर है।

सद्गुरु कबीर कहते हैं 'मांझ-मंझरिया' हृदय बीच स्थित चेतन को जो जान लेता है कि जिस ईश्वर-परमात्मा को मैं बाहर खोज रहा हूं वह तो मेरा अपना आत्मस्वरूप ही है, वह मैं ही हूं, वह मुझसे अलग हो नहीं सकता, वह और मैं दो नहीं एक है, वह स्थिर हो जाता है, उसका भटकना बंद हो जाता है। जब तक अपने हृदय-बीच स्थित चेतन को नहीं जानता था तब तक चंचल बना भटक रहा था, और जब जान लिया कि जिसे मैं खोजता हूं वह मैं ही हूं तब भटकना बंद हो गया और जीवन में तथा मन में स्थिरता आ गयी, क्योंकि अब बाहर से कुछ पाने की आशा रह नहीं गयी।

इस प्रकार सद्गुरु कबीर कहते हैं कि जो संतों के बीच, संतों की संगति में सत्यतथ्य को, प्रकृति की कारण-कार्य व्यवस्था एवं विश्व के शाश्वत नियमों को जान लेता है और उस आत्मस्वरूप को भी जान लेता है जो हृदय-बीच स्थित है, हृदय निवासी है वह स्थिर-शांत हो जाता है। 'मांझ मंझरिया बसै सो जाने, जन होइ हैं सो थीरा हो।' इसके बाद सद्गुरु कहते हैं—'निर्भय भये तहाँ गुरु की नगरिया, सुख सोवै दास कबीरा हो।' वह गुरु की नगरी में पहुंचकर या निवासकर निर्भय हो जाता है और सुखपूर्वक शयन करता है।

सत्यतथ्य, प्रकृति की कारण-कार्य-व्यवस्था, विश्व के शाश्वत नियम तथा अपने आत्मस्वरूप को जान लेने मात्र से काम नहीं बनेगा, कल्याण नहीं होगा। जानने के बाद वैसी रहनी-आचरण में रहने तथा वैसी संगति में रहने की आवश्यकता होती है। जिसके लिए सद्गुरु कबीर गुरु की नगरी का प्रयोग करते हैं। गुरु की नगरी के भी दो अर्थ हैं—पहला संत-समाज जो बाहरी है और दूसरा स्वरूपस्थिति जो आंतरिक है। और साधक को पूर्ण निर्भय होने के लिए दोनों की आवश्यकता है।

कोई भी साधक हो यदि ज्ञान हो जाने के बाद वह साधु-संगति, संत-समाज का आश्रय छोड़ देता है, यह समझकर कि जो जानना था वह तो मैं जान लिया हूं, मुझे तो पूरा ज्ञान हो गया है, अब मुझे संत-समाज में संतों के साथ रहने की क्या आवश्यकता, तो निश्चित ही वह अपने साधना-पथ से भटक जायेगा और उसका पतन हो जायेगा। ज्ञान हो जाने और साधना में बहुत कुछ परिपक्व हो जाने के बाद भी जीवनपर्यंत साधु-संत-समाज में रहने से ही ज्ञान तथा साधना सुरक्षित रह सकते हैं। साधु-संत-समाज साधक के लिए सुरक्षा-कवच-सुरक्षित किला है। संत-समाज को छोड़कर साधक के लिए बाहर कहीं सुरक्षा नहीं है। बाहर सर्वत्र भयस्थल है। निर्भयता है तो संत-समाज में। यही गुरु की नगरी है।

कहा जाता है गोपीचंद अपना राज-पाट त्यागकर जब वैराग्य करने चलने लगे तब उनकी माता मैनावती ने उन्हें साधना-वैराग्य को सुरक्षित रखने के लिए सावधानी की जो अनेक बातें बतायी थीं उनमें एक यह भी था कि सदैव किला में ही रहना। जिस प्रकार राजा अपने राज-परिवार के साथ किला में ही रहकर सुरक्षित रह सकता है बाहर नहीं, क्योंकि बाहर उसके अनेक शत्रु घूम रहे होते हैं, उसी प्रकार साधु-साधक संत-समाज रूपी किला में रहकर ही सकुशल साधना कर सकता है, बाहर रहकर नहीं। जो संत-समाज रूपी गुरु की नगरी में रहकर साधना करता है एक दिन उसकी

साधना पूरी हो जाती है और वह शीघ्र ही सिद्धि-लाभ अर्थात आत्मशांति, आत्मविजय प्राप्त कर लेता है और पूर्ण निर्भय स्थान स्वरूपस्थिति प्राप्त कर निर्भय हो जाता है। अंततोगत्वा स्वरूपस्थिति-आत्मस्थिति ही गुरु की नगरी है। गुरु का उपेदश इसी स्वरूपस्थिति के लिए ही होता है।

स्वरूपस्थिति में मन पूर्ण शांत हो जाता है। वहां किसी प्रकार की कोई हलचल-द्वन्द्व नहीं है। मन पूर्ण शांत होकर स्वरूपस्थ हो जाने पर हानि-लाभ, शोक-मोह, मिलन-वियोग का कोई द्वन्द्व नहीं रह जाता, मन के सारे द्वन्द्व समाप्त हो जाते हैं। यहां तक स्वरूपस्थ-आत्मलीन पुरुष के लिए जीना-मरना समान हो जाते हैं। जिसने सारी अहंता-ममता का त्याग कर दिया है उसके मन में न किसी से मिलने की चाहना रह जाती है और न किसी के बिछुड़ने की चिंता। उसके मन की जो दिव्य स्थिति रहती है वही गुरु का नगर है। इस गुरु के नगर में जो निवास करता है वह पूर्ण निर्भय हो जाता है। और वह निश्चिंत होकर सुख की नींद सोता है।

धन, विद्या, पद-प्रतिष्ठा, प्रभुता-अधिकार, पुत्र-परिवार पाकर न कोई निर्भय हो सकता है और न सुख की नींद सो सकता है, क्योंकि इन सबके बिछुड़ जाने, छिन जाने, नष्ट हो जाने का भय सदैव बना रहता है और इनकी ही चिंता में मनुष्य सुख की नींद सो नहीं पाता। इसके विपरीत जो सारे अहंकार को छोड़कर पूर्ण विनम्रतापूर्वक साधनारत है, सबकी मोह-ममता छोड़कर आत्मलीन है, जिसका मन पूर्ण निर्विषय, शुद्ध, संयत, शांत है वह पूर्ण निर्भय हो जाता है और सुखपूर्वक सोता है।

रात्रि में सोने के समय तो वह सुखपूर्वक सोता ही है, जागृत काल में उसका मन समाधिस्थ होने से मानो वह हर समय सुखपूर्वक सो रहा होता है। स्वामी शंकराचार्य प्रश्नोत्तरी में कहते हैं—शेते सुखं कस्तु समाधिनिष्ठः अर्थात सुखपूर्वक कौन सोता है? उत्तर है जो समाधिनिष्ठ है। मन का सब तरफ से सिमटकर अंतर्मुख होकर समाधिलीन हो जाना ही गुरु की नगरी में निवास करना है। सद्गुरु कबीर कहते भी हैं—'सहज ध्यान रहु सहज ध्यान रहु, गुरु के बचन समाई हो।' हे साधको, तुम सदैव सहज ध्यान, सहज समाधि में, अपने चेतनस्वरूप के ध्यान में निमग्न रहो और गुरु के वचनों में लीन हो जाओ।

गुरु के वचनों में लीन होने का अर्थ है हृदय-बीच विराजमान अपने चेतन स्वरूप को भलीभांति जानकर बाहर भटकना छोड़कर अपने आप में स्थित हो जाना। और इसके लिए गुरु की नगरी संत-समाज में रहकर साधना करते हुए सबकी अहंता-ममता छोड़कर आत्मलीन-स्वरूपस्थित हो जाना। स्वरूपस्थिति में पूर्ण निर्भयता है और जो पूर्ण निर्भय हो जाता है, जिसके मन के सारे भय, यहां तक शरीर की मौत का भय भी, मिट जाता है वह सुखपूर्वक सोता है। उसका पूरा जीवन सुखपूर्वक व्यतीत होता है। इसी के लिए सद्गुरु कबीर ने कहा है—

मांझ मंझरिया बसै सो जाने, जन होइ हैं सो थीरा हो।
निर्भय भये तहाँ गुरु की नगरिया, सुख सोवै दास कबीरा हो॥

गुरु का जो भक्त है और इस भक्ति के परिणामस्वरूप जिसे स्वरूपस्थिति का अचल राज्य मिल गया है—'तो कहँ राज देउँ हो देवा' वह पूर्ण निर्भय होकर सुख से सोता है, क्योंकि अब उसका 'एको बार न होइहैं बाँको। बहुरि जन्म न होइहैं ताको।' अतः हर कल्याणार्थी साधक का कर्तव्य है, कहना चाहिए हर उस मनुष्य का कर्तव्य है, जो इसी जीवन में परम शांति, परमानंद का अनुभव करना चाहता है, वह विनम्रतापूर्वक संत समाज में रहकर भक्ति-साधना पथ पर चलकर स्वरूपस्थिति प्राप्त करे। यही मानव जीवन का उद्देश्य है और इसी में पूर्ण शांति एवं निर्भयता है।

सारा संसार परिवर्तनशील है। यहां सब कुछ सब समय परिवर्तित हो रहा है। जो परिवर्तनशील है, निरंतर बदल रहा है, उसमें स्थिरता कहां होगी और बिना स्थिरता के शांति कैसे मिल सकती है। अपरिवर्तित एवं स्थिर तो चेतन है। वह एकरस है। उस अपरिवर्तित, स्थिर एवं एकरस चेतन में जो स्थित है, वह स्थिर है। इसलिए सबकी अहंता-ममता छोड़कर अपने चेतनस्वरूप में स्थित होना ही अध्यात्म का सार है। सारी साधनाएं इसी के लिए हैं। स्वरूपस्थिति में अपूर्णता रह नहीं जाती। यदि कुछ है तो केवल स्थिरता, निर्भयता एवं पूर्णता।

—धर्मेन्द्र दास

जीवन प्रबंधन

लेखक—अखिलेन्द्र दास

जीवन प्रबंधन का मतलब होता है व्यवस्थित, सुलझा हुआ तथा उलझन रहित, गांठ रहित जीवन। जीवन बहुत बेशकीमती है। इसे कैसे जीना है, अपने ऊपर है, रीझ-खीझ कर या प्रसन्नतापूर्वक उत्साह से। हर रोज एक नई चमक लानी है, अपने व्यक्तित्व का विकास करना है। हम अपने जीवन के निर्माता खुद हैं। प्रकृति से हमको मनुष्य का जन्म मिला है पर जीवन नहीं मिला है। अब इस जन्म को कैसे सफल करना है अपने ऊपर है। इस ढंग से जीयें कि हमें महसूस हो वास्तव में हमने एक बेहतर जीवन जिया है, दुख और दर्द रहित जीवन जिया है। इसका मतलब यह नहीं है कि जीवन में दुख-दर्द नहीं होगा, प्रतिकूलता नहीं होगी। यह सारी चीजें होते हुए भी हम अच्छा जीवन जी सकते हैं। इसी दुख भरे संसार में, इसी भागादौड़ी में हमको सुख-शांति ढूंढ निकालना है। जहां एक दूसरे में राग-द्वेष है वहां प्रसन्नता का माहौल बनाना है। जहां तू-तू-मैं-मैं उलझन भरी जिंदगी है, वहां भी हमें एक बेहतरीन जीवन जीना है, बस हमारे जीने का तरीका बदल जाए।

आपने देखा होगा रेगिस्तान में कई किलोमीटर तक रेत ही रेत दिखाई देती है लेकिन वहां भी कहीं-कहीं झाड़ मिलते हैं, जहां बैठकर लोग शुकून महसूस करते हैं। जब समुद्र में चलते हैं तो खारा ही खारा पानी मिलता है लेकिन वहां भी कहीं-कहीं मीठे पानी का स्रोत होता है। जब घनघोर काला बादल छाया होता है तो उस काले बादल में भी सफेद रंग की परिछाई दिखाई देती है। ऐसे ही इस दुख भरे जीवन में एक मस्तानगी का जीवन है। जहां न कोई रिश्ता-नाता है, न कोई अपना-पराया है। समस्याएं खड़ी तब होती हैं जब हम अपने जीवन को समाज के बीच में रखते हैं। हमारा जीवन हमारे लिए सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। अपने लिए हम कितना टाइम देते हैं। हमारा सारा समय सामाजिक और व्यावसायिक कार्यों में निकल जाता है। यदि स्वयं के लिए हमारे पास समय नहीं है तो जीवन अच्छा नहीं हो सकता।

यह समझ पक्की होना चाहिए कि हम अपने जीवन के शिल्पकार खुद हैं। हमें स्वयं अपने जीवन को छिल-गढ़ कर संवारना है। दिल्ली में अक्षरधाम है जहां प्रवेश करते ही एक पत्थर की मूर्ति है और वह पत्थर की मूर्ति छेनी और हथौड़ी से अपने ही शरीर को छिल रही है। वह मूर्ति हर व्यक्ति के लिए एक संकेत है कि हमें अपने दुर्गुणों को छिल-छिल कर निकाल देना है और अपने स्वभाव को सुंदर बनाना है।

एक व्यक्ति रास्ते से जा रहा था। सड़क के किनारे एक मूर्तिकार एक मूर्ति बना रहा था। छेनी और हथौड़ी से चोट मार-मार कर पत्थर को छिल रहा था। धीरे-धीरे उस पत्थर से एक नया रूप सामने आ रहा था। राहगीर ने मूर्तिकार से कहा—आपने बहुत सुंदर कलाकारी की है, बहुत सुंदर रूप बनाया है। तब मूर्तिकार ने कहा—विशेषता मेरी नहीं है, विशेषता इस पत्थर की है। इस पत्थर में पहले से यह रूप छिपा हुआ था, बस मैं इसके जो गलत अंश थे उनको छिल-छिल कर निकालता गया और यह सुंदर रूप सामने आ गया। छेनी और हथौड़ी की चोट इस पत्थर ने सहा है। मेरे चोट मारने से यह पत्थर टूटा नहीं बल्कि सहता गया, उसी का परिणाम है आज भगवान का रूप बना हुआ है। ठीक ऐसे ही हमें अपने जीवन से गलत स्वभाव, गलत आचरण को छिल-छिल कर निकालना है। पत्थर वह भी होता है जो छेनी और हथौड़ी की चोट नहीं सह पाता है और टूट जाता है। तब वही पत्थर लोगों के पैरों से कुचला जाता है। ठीक ऐसे ही हमारे जीवन के साथ होता है। हम अनुकूलता-प्रतिकूलता में विचलित हो जाते हैं। प्रतिकूलता में अपने आप को नहीं सम्हाल पाते हैं और टूट जाते हैं, बिखर जाते हैं, कमजोर हो जाते हैं तो वही टूटे पत्थर की तरह हो जाते हैं। हमारा व्यक्तित्व

हलका हो जाता है और हम बेकाम रह जाते हैं। इसलिए हमें छोटी-छोटी बातों में खीझना नहीं है बल्कि अपने आप को सम बनाए रखना है। धैर्य खोना नहीं, धैर्य बनाए रखना है। तब कहीं हम जीवन अच्छे ढंग से जी सकते हैं। कुछ लोग जीवन को अमन-चैन से जीते हैं और कुछ लोग जीवन को घसीट डालते हैं। यह अपने ऊपर है कि हम कैसे जीना चाहते हैं।

हमारा भाग्य कोई दूसरा नहीं बनाता है। हमें अपने भाग्य का निर्माण खुद को करना है। दूसरे के भरोसे बैठे-बैठे जीवन बीत जाएगा। जैसे हैं वैसे ही रह जाएंगे। योग्य आदमी कभी दूसरे को दोष नहीं देता है बल्कि जमकर मेहनत करता है और आगे बढ़ता चला जाता है। वह दूसरों के पैर खींचने का काम नहीं करता है बल्कि उसी के सामने से आगे निकल जाता है अपने हौसले के बल पर। कुछ लोग कहते हैं मेरे साथ मेरे मां-बाप ने अन्याय किया है मुझे नौकरी पर नहीं लगाया। सरकार ने हमको रोजगार नहीं दिया, आज हम बेरोजगार बैठे हैं। हमारे पड़ोसी ठीक नहीं हैं। हमारे परिवार वाले ठीक नहीं हैं। दूसरे को दोष देते हैं। कमजोर लोग अपनी कमजोरियों को दूसरों के ऊपर थोपते हैं। जीवन हमारा है जीना कैसे है अपने पर निर्भर करता है। हमारे पास योग्यता तो है पर उस योग्यता को पहचान नहीं पा रहे हैं, क्योंकि हम प्रमाद में पड़े हुए हैं। इसलिए हम सफल जीवन नहीं जी पा रहे हैं। हमको हमसे ज्यादा कोई नहीं जान सकता। जितना हमें अपने बारे में जानकारी होगी, उतना दूसरे को नहीं हो सकती है। हम जितना बेहतरीन अपने जीवन को बना सकते हैं, उतना अच्छा दूसरा नहीं बना सकता है। हमारे पास कितनी योग्यता है हमें पता है। हम क्या कर सकते हैं, क्या नहीं कर सकते हैं हमें जितना मालूम होगा, उतना दूसरा नहीं जान सकता है। हम छोटी-छोटी बातों में विचलित होते रहते हैं। घर-परिवार में छोटी-छोटी बातों से शिकायतें आती रहती हैं। बात कोई बड़ी नहीं होती है। बस तिल का ताड़ बनाने वाली बात होती है। इसीलिए रिश्ते में आज कटुता आती जा रही है। वाणी में जितनी कड़वाहट होती जाती है, उतना ही परिवार में कड़वाहट होती जाती है और परिवार विखंडित होता जाता है। जितना हम वाणी में अमृत घोलते हैं, उतना ही परिवार में प्रेम बढ़ता है और उतना ही जीवन में सौंदर्य आता है।

जीवन प्रबंधन (life management) को व्यवस्थित ढंग देने के लिए हम जीवन को तीन भागों में बांट सकते हैं—1. व्यक्तिगत जीवन (personal life) 2. सामाजिक जीवन (social life) और 3. व्यावसायिक जीवन (professional life)।

1. व्यक्तिगत जीवन (Personal life)—व्यक्तिगत जीवन हमारे जीवन का एक बहुत बड़ा हिस्सा है। अपने जीवन के 12 घंटा हमें अपने लिए देना चाहिए। इन 12 घंटों में हमको सोना, खाना, नहाना है। इसके बाद हम जीवन में जो कुछ करना चाहते हैं, वह काम भी उसी समय में करना है। 6 से 7 घंटा सोना, सुबह जल्दी उठना, रात्रि में जल्दी सोना, फिर सेवा, स्वाध्याय और साधना। यह सब करने के बाद 1 घंटा ऐसा निकालें जिसमें सिर्फ हम अकेले हों। उसी समय हमको अपने जीवन के बारे में सोचना है। एक घंटा में जो हम चार्ज होते हैं वही 24 घंटा चलता है। उसी समय हमें अपने बारे में जानकारी होती है, मैं कैसा हूं और कैसा होना चाहिए। इसी व्यक्तिगत जीवन में हम कुछ कर सकते हैं। बाकी तो भागदौड़ की जिंदगी है। हमारा व्यक्तिगत जीवन ऐसा हो कि हमारे परिवार वाले या पड़ोसी कोई भी शिकवा-शिकायत न करे। हमारे जीवन में कोई प्रवेश नहीं करना चाहिए। जैसे बाहरी कबाड़, प्रपंच वार्ता। वहां सिर्फ आत्मचिंतन हो, तब बेहतरीन जीवन हो सकता है।

हम व्यक्तिगत समस्याओं को समाज में न थोपें और समाज की समस्याओं को व्यक्तिगत जीवन में न लायें और न ही व्यावसायिक समस्याओं को सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन में लायें। जहां की समस्या है उसको वहीं छोड़ दें, उसका समाधान वहीं है। हम एक जगह की समस्याओं को दूसरी जगह पर न जोड़ें। हमारे

अंदर इतना साहस होना चाहिए कि हम अपनी समस्याओं का समाधान कर सकें। समस्या जब भी आती है तो समाधान लेकर आती है। दुनिया में आज तक ऐसी कोई भी समस्या नहीं है जिसका समाधान न हो। हम कैसी भी उलझन में पड़े हों थोड़ी देर के लिए शांत होकर बैठ जायें तो उलझी हुए समस्याएं सुलझ जाती हैं। आत्मचिंतन ही उत्थान का द्वार है। कोई भी व्यक्ति कुछ नया काम करता है तो अकेले हो करके करता है, भीड़ में नहीं। अपने विचारों में डूब जाता है, तब कहीं उसको एक नया मार्ग दिखाई देता है। ठीक हमें भी ऐसे ही अपने जीवन के साथ करना है।

2. सामाजिक जीवन (social life)—परिवार, दोस्त और रिश्ते-नाते हैं। हमें एक अच्छा जीवन जीना है तो कुछ वक्त हमें अपने परिवार के बीच देना होगा और थोड़ा वक्त दोस्त-यारों को, लेकिन गलत काम के लिए नहीं अच्छे काम के लिए। हमारा व्यक्तिगत जीवन अच्छा होता है पर हम बनते और बिगड़ते हैं सामाजिक जीवन में, क्योंकि समाज में भटकाने वाले ज्यादा होते हैं और उनके बहकावे में आकर भटक जाते हैं। हमारा एक लक्ष्य होता है उसे भूल जाते हैं। व्यक्तिगत जीवन बादशाहत की जिंदगी होती है। हमारा व्यक्तिगत जीवन पारिवारिक जीवन में आने के बाद गड़बड़ हो जाता है असावधानीवश, क्योंकि हमने अपने व्यक्तिगत जीवन को परिवार और दोस्त-यारों में जोड़ दिया। दुनिया के लोग मजा लेने वाले हैं, इनके चक्कर में हमारी जिंदगी तबाह हो जाती है। वक्त गुजर जाता है और उस बिगड़े वक्त में हम गुलामी करते रह जाते हैं, फिर अपना विकास नहीं कर पाते हैं। इसलिए सामाजिक जीवन में बहुत सोच-विचार कर आगे बढ़ना चाहिए।

3. व्यावसायिक जीवन (professional life)—व्यक्तिगत जीवन और सामाजिक जीवन के पीछे व्यावसायिक जीवन है। यदि हमें समाज में रहना है तो व्यावसायिक जीवन में भी हमारी भागीदारी होनी चाहिए। हम अपने निर्वाह के काम-काज में इतना व्यस्त न हो जायें कि अपना व्यक्तिगत जीवन और पारिवारिक जीवन भूल जाएं। जीवन है तो कुछ पैसों की भी जरूरत है। उसके बिना जीवन नहीं चल सकता है। लेकिन हम पैसा कमाने में पूरी जिंदगी को बरबाद न कर दें। हम अपने आपको पैसा छापने की मशीन न बना लें। यदि हम वही करते हैं तो हममें और मशीन में क्या अंतर है। हम कोई भी काम करें तो हमारे अंदर विराजमान आत्मा को भी शांति मिलनी चाहिए। इसलिए व्यावसायिक जीवन में हम कुछ वक्त दें और कुछ ही वक्त में तन्मयता, तत्परता और ईमानदारी के साथ लगे रहें तो बहुत ही जल्दी आगे बढ़ जाएंगे। हमारे जीवन में निखार होनी चाहिए, चमक होनी चाहिए, हर रोज तरोताजगी आनी चाहिए। हमारा व्यक्तिगत जीवन, पारिवारिक जीवन और व्यावसायिक जीवन अच्छा है तो हमें ज्यादा मित्र बढ़ाने की जरूरत नहीं है। हमारे फॉलोवर की गिनती नहीं रहेगी, हमारा जीवन अच्छा है तो और जीवन ऐसा जिएं कि हमारे सहयोगी बढ़ते चले जाएं क्योंकि अच्छे लोगों की तलाश पूरी दुनिया को है।

जीवन प्रबंधन में आत्मज्ञान (Self knowledge) जब तक आत्मज्ञान नहीं होगा तब तक हम जीवन प्रबंधन नहीं कर सकते, जीवन को व्यवस्थित नहीं कर सकते। इसीलिए पहले आत्मज्ञान होना चाहिए। मैं कौन हूं, मेरा उद्देश्य क्या है, क्यों आया हूं, मैं क्या लेकर आया हूं और क्या लेकर जाऊंगा, मुझे क्या करना है और क्या कर रहा हूं?

सद्गुरु कबीर साहेब कहते हैं—

नाँव ना जाने गाँव का, भूला मारग जाय।
काल गड़ेगा काँटा, अगमन खसी कराय॥

सद्गुरु कहते हैं राहगीर को यह पता नहीं था कहां जाना है। वह रास्ता में भटकता रहा। ठीक इसी प्रकार आत्मज्ञान न होने पर लोग मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर, गुरुद्वारा में, तीर्थयात्राओं में अपना कीमती समय बरबाद कर देते हैं। आत्मज्ञान न होने से आदमी पत्थर की मूर्तियों के सामने नाक रगड़ता है। आत्मज्ञान नहीं होने पर हम गुरु का भी निर्णय नहीं कर पाते और तमाम कर्मकाण्डियों के पास जाकर अपना जीवन बरबाद कर देते हैं। जो अपना महत्त्व नहीं जान पाया वह दूसरे को

क्या मार्ग बतायेगा। खुद भटके हुए हैं। मनुष्य जीवन का परम उद्देश्य है आत्यांतिक सुख की प्राप्ति। वह सुख जो कभी नहीं छूटने वाला है, अनंत काल तक हमेशा बना रहे। इसके लिए लोगों का ध्यान ही नहीं है। इसलिए पहले आत्मज्ञान होना चाहिए।

सुख दो प्रकार का होता है। एक होता है वस्तुनिष्ठ (objective) सुख। वह सुख जो प्राणी और पदार्थों से मिल रहा है। वास्तव में प्राणी-पदार्थों से सुख मिलता नहीं है, सिर्फ एक भ्रम बना रहता है। यह भ्रम तब तक बना रहता है जब तक हम उन प्राणी और पदार्थों के करीब रहते हैं और सुख का एहसास करते हैं। जैसे ही उनसे दूर होते हैं दुख बढ़ जाता है। बाहर से मिलने वाला सुख अंततः दुख का ही कारण होता है। जो भी बाहर से मिलता है वह अंत में छूट जाता है। अज्ञानवश बाहर से मिलने वाले प्राणी-पदार्थों में हम सुख ढूंढ़ते हैं लेकिन वह दुख का कारण बन जाता है। जैसे एक व्यक्ति ने 4-6 गुलाब जामुन खाया तो उसे अच्छा लगा, सुख मिला लेकिन उसको 50 गुलाब जामुन खाने को दिया जाए तो वह दुख का कारण बन जाएगा। ठीक ऐसे ही जीवन में होता है। हम किसी से गले मिलते हैं तो दो-चार मिनट अच्छा लगता है। लेकिन कहीं वह व्यक्ति घंटा भर हमको न छोड़े तो दुख का कारण बन जाएगा। बाहर से मिलने वाला सुख क्षणिक सुख है। यदि उसमें प्रगाढ़ता हो गई तो दुख का कारण बन जाता है।

आत्मनिष्ठ (Subjective) सुख वह है जिसमें कोई विषय नहीं है, न प्राणी-पदार्थ है, जिसे हम आत्मानुभूति कहते हैं, जो हमें अपने पास से मिलता है। हम जितना अकेले होते हैं और आत्मचिंतन करते हैं, उतना ही अपनापन का एहसास होता है, जागरूकता (awareness) की स्थिति होती है उतना ही हम आनंद महसूस करते हैं। जब आदमी इस दुनिया में उलझ जाता है, प्राणी-पदार्थों में उलझ जाता है तब वह एकांत चाहता है, जहां कोई न हो सिर्फ अकेले, अपने आपसे मुलाकात करता है। अपने अंदर जो सुख की खान है उसकी तलाश करता है। धीरे-धीरे एक ऐसी स्थिति आती है जहां अपने आप में मस्त हो जाता है। वह सुख अनंत काल तक बना रहता है। यदि हम पूरे संसार की जानकारी प्राप्त कर लिये, पूरा ज्ञान-विज्ञान जान लिये, परन्तु अपने आप को नहीं जान पाये तो क्या जाने, सारा जानना बेकार चला जाएगा। सबसे मुलाकात किये लेकिन अपने आप से मुलाकात नहीं किये तो क्या मतलब। यदि हम अपने आप से मुलाकात कर लेते हैं तो संसार से मुलाकात करने की जरूरत नहीं है। फिर हमारा जीवन प्रिय हो जायेगा। तब उसकी मस्तानगी कुछ अलग होगी। सद्गुरु कबीर की भाषा में कहें तो 'उठत बैठत कबहुँ न छूटे ऐसी तारी लागी।' जीवन में एक लौ लग जाती है, अपने आप से। फिर हमारा हर कर्म पूजा बन जाता है। सद्गुरु कबीर कहते हैं 'जो कुछ करों सो पूजा।' हमारा हर कर्म पूजा बन जाता है। हम जो कुछ भी करें तो यह मानें कि मैं पूजा कर रहा हूं, उसके बाद जो उसमें आनंद महसूस होगा वह कुछ अलग ही होगा। हम दूसरे की गलतियों को अपने ऊपर ले लेते हैं इसलिए हम विकास नहीं कर पाते हैं। गांठ रहित जीवन होना चाहिए। एक व्यक्ति एक रस्सी लेता है और उसमें रोज एक गांठ लगाते जाता है। पूरे साल के बाद देखता है रस्सी में 365 गांठें लगी हुई हैं। ठीक ऐसे ही हमारे जीवन के साथ होता है। हम रोज नयी-नयी समस्याएं बनाते चले जाते हैं। यदि हम अपनी समस्याओं का समाधान करते जायें तो एक दिन ऐसी स्थिति आएगी कि हमारे जीवन में एक भी समस्या नहीं रहेगी। तब हमारी स्थिति होगी समस्या मुक्त जीवन।

आत्म संयम (Self-restraint)—अपना निर्माण करने में, जीवन को बदलने में, व्यवस्थित करने में आत्म संयम जरूरी है। जिस व्यक्ति में संयम नहीं है वह व्यक्ति रीझ-खीझ का जीवन जीता है, शिकायत भरा जीवन जीता है। हर व्यक्ति के प्रति उसकी शिकायत होती है और एक दिन ऐसी स्थिति आती है कि जीवन उलझनपूर्ण हो जाता है। अब शांति से बैठना मुश्किल हो गया, अकेले बैठने में घबराहट, क्योंकि मन उलझ गया

है। संयम की शुरुआत करना है अपने आप से। खाने-पीने में संयम, बोलने में संयम, देखने में संयम। तन, मन, वचन से पूर्ण संयमित जीवन ही व्यवस्थित जीवन हो सकता है। जिन्होंने आत्म संयम करना सीख लिया वह व्यक्ति महान व्यक्ति कहलाता है। इस संसार में कोई किसी को भी महान नहीं बना सकता है। हर व्यक्ति अपने कर्मों से, अपने सुंदर स्वभाव से, अपने सुंदर आचरण से महान बनता है। आज मनुष्य का उठना-बैठना, खाना-पीना, बोलना-चालना सब कुछ असंयमित हो गया है। हम मन-इंद्रियों के इशारे पर नाचते हैं। मन-इंद्रियों को हम संचालित नहीं कर पा रहे हैं बल्कि मन और इंद्रियां हमको नचा रही हैं। कोई भी व्यक्ति महान आत्म संयम से ही बनता है। यदि आत्म संयम होता तो महाभारत युद्ध नहीं होता। हम अपने मन और इंद्रियों को संयमित रखें। जैसे हम संचालित करें वैसे ही हमारे मन और इंद्रियां संचालित हों। तब संयमित और व्यवस्थित जीवन होगा।

आत्मविश्वास (Self confidence)—यह महान लोगों का अस्त्र है। आदमी शरीर से कमजोर हो सकता है लेकिन जिनका विश्वास मजबूत हो उनका मन कमजोर नहीं होता है। प्रत्येक व्यक्ति के अंदर योग्यता है। अपने को जैसा चाहे वैसा बना सकता है। अपने जीवन को अच्छा बनाने के लिए बहुत पढ़ने-लिखने की जरूरत नहीं है, जरूरत है तो आत्मविश्वास की, अपने अंदर जो योग्यता है उन योग्यताओं को उभारने की। आलस्य और प्रमाद का त्याग करने की। आलस्य और प्रमाद से भरा हुआ व्यक्ति थर्ड क्लास का जीवन जीता है। उनका कोई व्यक्तित्व नहीं होता है। जिनका आत्मविश्वास मजबूत होता है जब उनको कोई कहता है कि तुम यह काम नहीं कर सकते हो तब वह अंदर से कहता है, मैं यह काम करके दिखाऊंगा। और एक दिन वह काम करके दिखा देता है। गुजरात की एक घटना है। एक व्यक्ति एक्सीडेंट में घायल हो गया। डॉक्टर ने कहा—यह व्यक्ति जिंदा तो है पर लाश की तरह रहेगा, बोल नहीं सकता, चल नहीं सकता। मरीज अपने मन ही मन बोला, डॉक्टर साहब, मैं एक दिन चल करके दिखाऊंगा। और एक दिन ऐसी स्थिति आती है, मरीज चल कर डॉक्टर के सामने आता है। डॉक्टर आश्चर्यचकित रह जाता है। आत्मविश्वास ऐसा होता है। यह काम कमजोर लोगों से नहीं हो सकता है। कमजोर लोग पीछे हट जाते हैं और साहसी आदमी आगे बढ़ जाते हैं। सद्गुरु कबीर कहते हैं—

करु बहियां बल आपनी, छाड़ बिरानी आस।
जाके आंगन नदिया बहै, सो कस मरै पियास॥

ऐ लोगो, अपने बाहुबल पर भरोसा रखो, दूसरे की आशा-भरोसा छोड़ दो। जिसके आंगन में नदी बह रही हो वह प्यासा क्यों मरे? जैसे कोई मछली पानी में रहकर प्यासी मरे, ऐसी हमारी स्थिति हो गई है। हमारा तन-मन स्वस्थ है फिर भी भटक रहे हैं। हम अपने बाहुबल पर भरोसा रखें। हम बहुत कुछ कर सकते हैं। हमारे लिए रोज नया अवसर आता है। अपने जीवन में नयी चमक ला सकते हैं।

आत्म विकास (Self development)—आत्म विकास का मतलब है खुद का विकास करना। समय और परिस्थिति के हिसाब से बदलते जाना, परंपराओं में जकड़े न रहना। आदमी परंपराओं को लेकर जकड़ा रह जाता है। हमारे बुजुर्ग लोग ऐसे करते थे तो हम भी आज वही न करते रह जायें। समय बदल गया है। समय के अनुसार हमको अपने विचार बदलना चाहिए। पहले लोग पैदल चलते थे, आज गाड़ी से चलते हैं। आदमी अज्ञानवश परंपराओं में जकड़े रह जाता है। हमें विचार करके वह ढंग बदलना चाहिए। हमें वही काम करना चाहिए जिससे समाज का और अपना हित हो। हमें अब कुछ नया करना चाहिए। हम कैसे सुरक्षित रहेंगे, हमारा मन कैसे सुरक्षित होगा। हम करना तो बहुत कुछ चाहते हैं लेकिन नहीं कर पाते हैं। सफलता नहीं मिल पाती है उसके पीछे कारण है हम अपनी शक्ति को पूरा नहीं लगाते हैं। हम कुछ करते हैं तो अपनी 10% शक्ति लगाते हैं बाकी 90% सुषुप्ति अवस्था में पड़ी रह जाती है। परिणाम में हम सफल नहीं हो पाते। हम कुछ भी करें तो पूरी 100% शक्ति लगा दें तो हम सफल निश्चित ही होंगे। हमारे अंदर क्रोध का भाव

उठा। उस क्रोध के भाव को दया के भाव में बदलने के लिए पूरी 100% शक्ति लगा दें तो क्रोध वहीं खत्म हो जाएगा। वैसे ही लोभ का भाव उठा और हम पूर्ण तन्मयता से लग जाएं, लोभ खत्म हो जाएगा। हम जब पूर्ण रूप से समर्पित हो जाते हैं फिर कोई भी काम करने में बहुत मेहनत नहीं लगती है। बहुत आसानी से हम सफल हो जाते हैं। एक विद्यार्थी पढ़ाई करता है। 18 घंटा पढ़ाई करता है, 6 घंटा में खाना-पीना-सोना रहता है, उसकी पूरी शक्ति पढ़ाई में है, उसका पूरा ध्यान पढ़ाई में है। तब कहीं वह विद्यार्थी अफसर बनता है। हम अपने जीवन को सफल बनाने में कितनी शक्ति लगाते हैं, कितना समर्पण है हमारे अंदर अपने लिए। कहीं हम समय पास तो नहीं कर रहे हैं। आज जो हमको अवसर मिला है वह कल नहीं मिलने वाला है। आज लोगों का अधिकतम समय मोबाइल के पीछे चला जाता है। आज जो हम कर सकते हैं वह काम कल नहीं कर सकते हैं। हम एक दिन पीछे चले जाते हैं इसलिए यह अवसर को जाने न दें।

स्व प्रबंधन-आत्म प्रबंधन (Self management)—हमें अपना प्रबंधन कैसे करना है। यह बहुत ही जरूरी है। हमें दूसरों पर आधारित नहीं रहना है, हमको अपने आप पर आधारित रहना है। जब तक हम अपने आप को व्यवस्थित नहीं करेंगे तब तक जहां हैं वहीं रहेंगे। एक दुकानदार रोज दुकान खोलता है, व्यापार करता है और रोज का हिसाब-किताब रखता है। कितना मुनाफा हुआ और कितना घाटा हुआ, रोज लिखता है। तब वह दुकान चला पाता है। ठीक ऐसे ही हमें अपने जीवन के साथ करना है। हमें रोज कुछ हासिल करते जाना है। एक व्यक्ति व्यापार शुरू करता है। एक करोड़ से शुरुआत करता है, धीरे-धीरे उसकी पूंजी 90 लाख, 80 लाख, 70 लाख इस तरह कम होते जाती है। एक दिन ऐसी स्थिति आती है, दिवालिया घोषित हो जाता है। हमारे जीवन के साथ ऐसा नहीं होना चाहिए। उम्र जैसे-जैसे बढ़ती जाती है वैसे-वैसे मन में प्रसन्नता और शांति बढ़ते जाना चाहिए। हमारे जीवन में रोज नई चमक आनी चाहिए। हम अपने बीते समय को लौट करके देखें तो हमें एहसास होना चाहिए कि पहले से मैं बेहतरीन जीवन जी रहा हूं। यदि यह नहीं हो पा रहा है तो हम व्यापारी की तरह अपने जीवन व्यापार में घाटे में हैं। अधिकतम लोग अपने जीवन को दूसरे को सौंप देते हैं। दूसरा हंसाते हैं तो हंसते हैं, दूसरा रुलाते हैं तो रोते हैं। सामने वाले ने प्रशंसा कर दी तो चेहरे में प्रसन्नता आ गई। सामने वाले ने निंदा की चेहरे में मायूसी छा गई। मतलब हंसना-रोना हमारे ऊपर नहीं है। हमने अपने जीवन का रिमोट दूसरे को दे दिया है। हम अपना प्रबंधन नहीं कर पा रहे हैं, दूसरे के इशारे पर चल रहे हैं। हमें अपना रिमोट अपने पास ही रखना है। एक चित्रकार एक चित्र में रंग भरता है। जितना ही अच्छा रंग भरता है, उतना ही अच्छा चित्र उभरकर सामने आता है। हमारे जीवन में हम ही चित्र हैं और हम ही चित्रकार भी। हमको अपने ही चित्र में रंग भरना है। हम कैसा रंग भरना चाहेंगे; अपने ऊपर है। जितना अच्छा हम अपने जीवन को व्यवस्थित करेंगे उतना ही हमारे जीवन में चमक आएगी।

समय का प्रबंधन (Time management)—समय हमारे जीवन का एक हिस्सा है। यदि हमने समय को सुचारू रूप से नहीं उपयोग किया तो हमारा समय व्यर्थ चला जाएगा। समय कोई वस्तु नहीं है जिसे हम बंद करके रख सकें, फिर जब चाहे तब उसे खोलकर उपयोग कर लें। हम चाह कर भी वह समय नहीं लौटा सकते, जो बीत गया हो। सफलता-असफलता हमारे हाथों में नहीं है पर जो आज अवसर मिला है उसका सही ढंग से दोहन तो कर सकते हैं। हो सकता है उसकी बदौलत हमें या समाज को कुछ मिल जाए। कहा गया है—समय ही धन है, समय ही सब कुछ है। आपके पास समय है तो आप पैसा कमा सकते हैं। आपके पास समय है तो आप यश कमा सकते हैं। आपके पास समय है तो अपना कीमती समय परिवार को दे सकते हैं। किसी को कुछ देना हो तो अपना कीमती वक्त दीजिए, उससे अच्छा गिफ्ट कुछ भी नहीं हो सकता है, पर सार्थक हो वहां अपना समय दें। यदि हम किसी को 10 मिनट देते हैं, तो हम अपने 10

मिनट का जीवन उसको देते हैं। हमारा हर पल बहुत बेशकीमती है। हम अपने एक-एक पल का सदुपयोग कर लें। समय की कीमत समझें। एक मिनट का महत्त्व उस यात्री से पूछें जो प्लेटफॉर्म में एक मिनट देर से पहुंचा है और ट्रेन छूट गई है। इसलिए समय को सार्थक जगह लगाना जरूरी है।

जीवन को व्यवस्थित करने में मन हमेशा साथ रहता है। मन अच्छा है तो सब धीरे-धीरे अच्छा होता चला जाता है। मन को व्यवस्थित रखना जरूरी है। मन क्या है। सरल ढंग से समझें। दीवार घड़ी में एक पेंडुलम होता है जो आगे-पीछे होता रहता है वह स्थिर नहीं होता है। ठीक मन भी ऐसा ही है कभी भूत की बातें, कभी भविष्य की बातें। कल्पनाओं में मन भटकता रहता है, स्थिर नहीं होता है। कभी भूत की बातों को लाकर खड़ा करता है, कभी भविष्य का सपना दिखाता है। यह मन का काम है। जिस समय हम मन को व्यवस्थित कर लेते हैं, मन को सुलझा लेते हैं तो भूत और भविष्य की चर्चाएं खत्म हो जाती हैं और मन वर्तमान में स्थित हो जाता है, तब वही मन सफल कार्य में लग जाता है। मन को हम गलत खुराक देते हैं, इसीलिए मन हमें भटकाता है। हम मन को गलत खुराक न दें मन स्थिर हो जाएगा। जैसे एक व्यक्ति पेड़ की छाया को मारता है तो छाया को कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, क्योंकि छाया का अपने आप में कोई अस्तित्व नहीं है। उसका मूल है पेड़। ठीक ऐसे ही मन का मूल है आत्मा। मन अपने आप में शक्तिशाली नहीं है। हम उसको खुराक देते हैं। इसीलिए मन को व्यवस्थित करना हमारा काम है। यदि मन बिगड़ता है तो सारा काम बिगड़ जाता है। हमेशा जागरूकता की आवश्यकता है। हमको बेहोशी में नहीं रहना है। जो सोया सो खोया। हमेशा जागते रहना है, हमेशा तत्पर रहना है और अपनी बुराइयों के साथ जंग करना है। बाहरी प्राणी और पदार्थों से सुख मिलता है ऐसा अहसास करते हैं लेकिन वह एक दिन छूट जाता है। अज्ञान के कारण हम मन को चटवा चटा देते हैं। मन को चटवा चटाना मतलब कर्मकांड में मन को उलझा देना, तीर्थयात्राओं में भटकते रहना। हम मन को एक खिलौना दे देते हैं, वह स्थायी नहीं है। इसलिए मन को अच्छे ढंग से संचालित करने की जरूरत है, मन को बाहर न भटकाएं, मन को अपने अंदर रमाएं। ❑

सन्त पलटू साहेब की बानी

(1)

पर स्वारथ के कारने संत लिया औतार॥
संत लिया औतार जगत को राह चलावैं।
भक्ति करैं उपदेस ज्ञान दे नाम सुनावैं॥
प्रीति बढ़ावैं जक्त में धरनी पर डोलैं।
कितनौ कहै कठोर बचन वे अमृत बोलैं॥
उनको क्या है चाह सहत हैं दुःख घनेरा।
जिव तारन के हेतु मुलुक फिरते बहुतेरा॥
पलटू सतगुरु पाय के दास भया निरवार।
पर स्वारथ के कारने संत लिया औतार॥

(2)

काम क्रोध जिनके नहीं लगै न भूख पियास॥
लगै न भूख पियास रहै तिरगुन से न्यारा।
लोभ मोह हंकार नींद की गरदन मारा॥
सत्रु मित्र सब एक एक है राजा रंका।
सुख दुख जीवन मरन तनिक न व्यापै संका॥
कंचन लोहा एक एक है गरमी पाला।
अस्तुति निंदा एक एक है नगन दुसाला॥
पलटू उनके दरस से होत पाप को नास।
काम क्रोध जिनके नहीं लगै न भूख पियास॥

(3)

पलटू गुनना छोड़ि दे, चहै जो आतम सुख।
संसय सोइ संसार है, जरा मरन को दुख॥
सबसे नीचा होइ रहु, तजि बिबाद को तीर।
पलटू ऐसे दास का, कोऊ न दामनगीर॥

व्यवहार वीथी

अच्छा बनें और अच्छा रहें

एक संत से एक साधक ने कहा—गुरुदेव! मैं सब समय सभी परिस्थिति में प्रसन्न रहना चाहता हूं और प्रसन्नतापूर्वक जीना चाहता हूं, परंतु लोगों द्वारा जब अपने बारे में अनेक प्रकार की उलटी-सीधी बातें सुनता हूं तब मैं प्रसन्न नहीं रह पाता और मेरा मन दुखी हो जाता है। मैं ऐसा क्या करूं जिससे लोग मेरे बारे में कुछ गलत बात न कहें, अपितु सब मेरी प्रशंसा करें, मुझे अच्छा कहें और मेरा मन हर समय प्रसन्न रहे?

साधक की बात सुनकर संत ने उसे एक चमकीला पत्थर देते हुए कहा—बेटा, मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दूं उससे पहले तुम्हें मेरा एक काम करना होगा और वह यह कि मैंने तुम्हें जो पत्थर दिया है तुम्हें बाजार में इसकी कीमत पूछकर आना है। ध्यान यह रखना कि कोई तुम्हें इसकी कुछ भी कीमत कहे तुम्हें इसे बेचना नहीं है, केवल कीमत जानना है।

साधक पत्थर लेकर एक कुंजड़े के पास जाता है और पूछता है—भाई! तुम इस पत्थर की क्या कीमत दे सकते हो? पत्थर को उलट-पलट कर देखने के बाद कुंजड़े ने कहा—यह पत्थर मेरे किसी काम का नहीं है, परंतु फिर भी तुम्हें इसके बदले में दो-चार किलो तुम्हारे पसंद की कोई सब्जी दे सकता हूं। कुंजड़े से पत्थर लेकर साधक पंसारी के पास जाता है। पंसारी पत्थर को देखकर कहता है—पत्थर सुन्दर और चमकदार है, परंतु मेरे किसी काम का नहीं है। हां, बच्चों के खेलने के काम आ सकता है, इसलिए मैं तुम्हें इसके बदले में दो-चार किलो कोई भी मसाला दे सकता हूं। साधक पत्थर लेकर एक बड़ी दुकान में एक सेठ के पास जाता है। सेठ उसे एक हजार रुपये देने को कहता है। वहां से साधक पत्थर लेकर एक सुनार के पास जाता है। पत्थर देखकर सुनार ने उसके बदले में साधक को दस हजार रुपये देने को कहा। सुनार की बात सुनकर साधक चौंक जाता है। और उससे पत्थर लेकर एक जौहरी के पास गया। जौहरी ने साधक को उसके बदले में एक लाख रुपये देने को कहा। साधक पत्थर लेकर एक बड़े जौहरी के पास गया और उसकी कीमत पूछा। पत्थर को अच्छी तरह देखकर तथा जांच-परखकर जौहरी ने कहा—यह पत्थर एक बेशकीमती रत्न है। इसकी सही कीमत का अंदाज लगाना बहुत कठिन है। हां, यदि तुम इसे बेचना चाहो तो मैं तुम्हें अभी पांच करोड़ रुपये दे सकता हूं। जौहरी की बात सुनकर तो साधक आश्चर्यचकित रह गया। वह उस पत्थर को लेकर संत के पास गया और कहा—गुरुदेव! यह तो एक अनमोल रत्न है। संत ने पूछा—तुम जिस-जिस के पास इसे लेकर गये क्या सभी ने इसकी कीमत एक-जैसी बतायी? साधक ने कहा—नहीं गुरुदेव! सबने अलग-अलग कीमत बतायी।

संत ने कहा—देखो! पत्थर वही है। किसी ने इसे साधारण पत्थर समझा और किसी ने अनमोल रत्न। जिसकी जैसी योग्यता एवं काबिलियत रही उसने उसी अनुसार इसका मूल्यांकन किया। यही बात तुम अपने बारे में समझो। तुम वही हो, किन्तु तुम्हें जो जैसा समझता है वह वैसा कहता है। उनके अच्छा-बुरा कहने से तुममें कोई परिवर्तन नहीं होता। यदि तुम प्रसन्न रहना चाहते हो तो इस बात पर कभी ध्यान मत दो कि लोग तुम्हारे बारे में क्या कहते हैं।

दुनिया में लोग अच्छे को बुरा और बुरे को अच्छा कहते-मानते हैं, परंतु जो अच्छा है वह अच्छा ही रहेगा, चाहे लोग उसे कितना भी बुरा कहते और मानते रहें और जो बुरा है वह बुरा ही रहेगा चाहे लोग उसे कितना भी अच्छा कहते रहें। जिसकी जैसी और जितनी समझ होगी वह वैसा ही कहेगा। सद्गुरु कबीर कहते हैं—

जाकी जैसी बुद्धि है, तैसी कहे बनाय।
दोष न वाको दीजिये, लेन कहाँ को जाय॥

दुनिया में खुश एवं प्रसन्न रहने का सुंदर उपाय यही है कि लोग हमारे बारे में क्या कहते हैं और कैसी

धारणा रखते हैं इस बात पर ध्यान न देकर स्वयं अच्छा कहने, अच्छा करने और अच्छा रहने पर ध्यान देना। यदि आप यह सोचते हैं कि सभी लोग मेरे बारे में अच्छी राय-धारणा रखें और अच्छा कहें तब मैं खुश रह पाऊंगा तो आपकी यह इच्छा कभी पूरी नहीं होगी। क्योंकि दुनिया में आज तक ऐसा कोई हुआ ही नहीं है जिसे सब अच्छा ही कहते रहे हों या कह रहे हों। पूज्यवर गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी कहते हैं—

अच्छा कहलाने की इच्छा, रखना कभी न मन में।
किन्तु सदा अच्छा रहना, मन में वाणी में तन में॥

अच्छा रहने का तरीका है स्वयं सब में अच्छा देखना, अपनी दृष्टि लोगों की अच्छाई पर ही केन्द्रित करना और उसका ही अनुकरण कर सत्पथ पर चलना। सत्पथ के रास्ते पर विध्न-बाधाएं तो आयेंगी परंतु उनसे घबड़ाने या विचलित होने की आवश्यकता नहीं है। धैर्यपूर्वक सत्पथ पर चलते रहने से सारी विध्न-बाधाएं दूर होती चली जायेंगी। न तो निन्दा की परवाह करना है और न प्रशंसा पाने की चाहना रखना है। हाथी तो आपने देखा ही होगा। हाथी गांव की गलियों से होकर गुजरता है तो पीछे-पीछे कुत्ते भौंकते रहते हैं और सामने लोग हाथी को गणेश जी का प्रतीक मानकर उसकी पूजा करते हैं, उसको प्रणाम करते हैं, परंतु हाथी किसी की परवाह नहीं करता। वह न पीछे मुड़कर भूंकने वाले कुत्तों को देखता है और न प्रशंसा-पूजा तथा प्रणाम करने वालों के पास ठहरता है और न पूजा-प्रणाम पाकर खुश होता है। बस यही उदाहरण हमें अपने लिए भी रखना है।

यदि हमेशा खुशदिल और प्रसन्न रहना चाहते हैं तो इस बात पर कभी ध्यान न दें कि लोग मेरे बारे में क्या कहते हैं। जिसकी जो मर्जी है कहने दें। हां, इतना ध्यान अवश्य रखें कि मुझसे किसी का अहित और कोई गलत काम न होने पाये। यदि कोई गलत कह और कर रहा है तो उसको लेकर खिन्न नहीं होना है। यदि वह आपकी बात सुनना पसंद करता है तो उसे सही राय दे दें। फिर भी वह गलत कहना और करना नहीं छोड़ता है तो अपना वह जाने। उसके गलत काम को लेकर आप अपनी प्रसन्नता क्यों खोयें।

सद्गुरु कबीर की यह सूक्ति सदैव स्मरण रखने योग्य है—"जो रहे करवा सो निकरे टोंटी।" जो करवा (बरतन, पात्र) में होगा वही टोंटी से बाहर निकलेगा। जिसके पास जो होगा दूसरों को वह वही देगा। अच्छाई होगी अच्छाई देगा, बुराई होगी बुराई देगा। इसमें खुश होने या नाखुश होने की कोई बात ही नहीं है। अपने को जो आवश्यकता है वह ले लेना है, शेष छोड़ देना है।

प्रशंसा पाने और अच्छा कहलाने की इच्छा मन में रहने से ही निंदा सुनकर दुख होता है। यदि प्रशंसा पाने और अच्छा कहलाने की इच्छा न हो तो निंदा सुनकर कोई दुख नहीं होगा। इसीलिए संतगण कहते हैं कि यदि निंदा-प्रशंसा से ऊपर उठकर प्रसन्नतापूर्वक जीना चाहते हो तो या तो अंधा, गूंगा, बहरा बन जाओ या मुरदा बन जाओ। अंधा, गूंगा, बहरा बनने का अर्थ है गलत देखना, बोलना और गलत सुनना बंद कर देना। खासकर अपने बारे में कोई गलत कह रहा है उस पर ध्यान ही न देना। मुरदा तो सबसे ऊपर उठ ही जाता है। मुरदा की चाहे कोई कितनी प्रशंसा करे और चाहे कोई कितनी निंदा करे उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह एकदम शांत पड़ा रहता है। यहां मुरदा बनने का अर्थ है सारे अहंकार-अभिमान को पूर्णतः त्यागकर विनम्र-सरल बन जाना। निंदा-प्रशंसा में सम रहना। इसके बाद जो करें अच्छा करें और जो कहें अच्छा कहें। वह भी अच्छा कहलाने के लिए नहीं किन्तु अच्छा रहने के लिए।

दर्पण में वही प्रतिबिंबित होता है जो दर्पण के सामने रहता है। दर्पण के सामने कुछ अलग वस्तु हो और दर्पण में प्रतिबिम्ब किसी अलग वस्तु का पड़े ऐसा नहीं होता। दर्पण में दर्पण का ही प्रतिबिम्ब कभी नहीं पड़ता, सदैव दूसरी वस्तु का ही प्रतिबिम्ब पड़ता है। किन्तु यदि सदैव खुश रहना है तो अपना दर्पण स्वयं बनना पड़ेगा। दूसरों को अपना दर्पण कभी न बनने दें। दूसरा आपके बारे में क्या सोचता है, इसके बारे में

सोचना एकदम बंद कर दें। स्वयं यह देखें कि जो मैं कह और कर रहा हूं वह न्यायोचित, निर्णय तथा विवेकयुक्त एवं स्व-पर के लिए हितकर है या नहीं। यदि आपका कहना और करना न्यायोचित, विवेकयुक्त तथा स्व-पर के लिए हितकर है तो फिर यह परवाह ही न करें कि दूसरा आपके लिए क्या कह रहा है। यदि आपका कहना और करना न्यायोचित एवं विवेकयुक्त नहीं है फिर भी लोग आपकी प्रशंसा कर रहे हैं तो ऐसे लोगों से तुरंत सावधान हो जायें और उनसे दूर हट जायें, उनका साथ छोड़ दें क्योंकि गलत बात और गलत काम की प्रशंसा सदैव गलत, दुर्जन एवं स्वार्थी लोग ही करते हैं। ऐसे लोगों का संग-साथ करना, उनसे प्रशंसा पाकर खुश होना अपने ही हाथों अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारना तथा अपना बिगाड़ करना है। संत एवं सज्जन कभी किसी के गलत बात और गलत काम की प्रशंसा नहीं करते।

याद रखें, दुर्जनों द्वारा प्राप्त प्रशंसा सदैव अहितकर होती है और संत-सज्जन द्वारा प्राप्त निंदा-आलोचना में कोई हित छिपा रहता है। दुर्जन अपना स्वार्थ साधने के लिए झूठी प्रशंसा करता है, किन्तु सज्जन कभी झूठी प्रशंसा नहीं करते। यहां झूठी प्रशंसा का अर्थ है गलत काम की प्रशंसा। सज्जन किसी की निंदा भी नहीं करते। वे किसी गलत बात या काम करने से रोकते हैं वह निंदा जैसी लगती है, परन्तु उसमें सामने वाले का हित ही निहित होता है।

प्रशंसा पाने की इच्छा कभी पूरी नहीं होती, अपितु जितनी प्रशंसा मिलती जाती है उतनी ही प्रशंसा पाने की भूख बढ़ती चली जाती है और आदमी झूठे, स्वार्थी तथा चापलूस लोगों से घिरता चला जाता है, जिनके घेरे से निकल पाना बहुत कठिन हो जाता है। इसलिए झूठी प्रशंसा पाने की इच्छा का पूर्णतया त्याग कर दें। सदैव नीति, न्याय और सच्चाई के रास्ते पर ही चलें और स्व-पर हित के लिए शुभ कार्य करते चलें। शुभ कर्म करते रहने और न्याय, नीति एवं सच्चाई के पथ पर चलते रहने से मन सदैव निर्भय और आश्वस्त रहेगा। भले कोई आपकी कद्र करे या न करे, आपका महत्त्व समझे या न समझे, परन्तु आप हीरे के समान अत्यंत ठोस एवं मूल्यवान बने रहेंगे और इसी में आपकी महत्ता एवं प्रशंसा है।

—धर्मेन्द्र दास

जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि

लेखक—विवेकदास

एक सुन्दर युवती बैठी है। उसे उसका पिता वात्सल्य भाव से देखता है। उसका बच्चा उसे मां के रूप में देखता है। उसका पति उसे पत्नी के रूप में देखता है। किन्तु सिंह उसे एक आहार के रूप में देखेगा। वस्तु एक ही है किन्तु भाव में अन्तर होने से सृष्टि बदल जाती है। वस्तु अपने आप में जैसी है, वैसी है, किन्तु हमारा भाव उसे अलग-अलग बनाता है। सद्गुरु कबीर ने बड़ा ही सुन्दर कहा है—

ज्यों दर्पण प्रतिबिम्ब देखिये, आपु दुहुँनमा सोय।
यह तत्त्व से वह तत्त्व है, याही से वह होय॥

जैसे हम दर्पण में प्रतिबिम्ब देखते हैं तो दोनों में हम होते हैं। जैसे हम होते हैं, वैसा ही प्रतिबिम्ब होता है। यदि हम दर्पण के सामने रोते हैं तो प्रतिबिम्ब रोता है। और यदि हंसते हैं तो प्रतिबिम्ब हंसता है। क्रोध करते हैं तो क्रोध करता है। हाथ उठाते हैं तो हाथ उठाता है। प्रतिबिम्ब अपने आप में कुछ भी नहीं है, वह तो हमारे रूप का ही प्रतिरूप है। जैसा हमारा रूप होगा वैसा ही प्रतिरूप होगा। इसमें प्रतिबिम्ब का कोई दोष नहीं है। यदि दोष लगता है तो वह दोष अपना ही होता है।

हमको लगता है कि अमुक हमसे द्वेष करता है या घृणा करता है। वैर करता है या प्रेम करता है। वास्तव में वह कुछ नहीं करता। उसमें हमारा ही भाव उद्घाटित होता है। हमारे बिम्ब का ही प्रतिबिम्ब होता है। जैसी हमारी भावना होती है वैसी ही भावना का प्रत्यारोपण होता है। और वैसी ही भावना से वह हमें देखता है या हमसे व्यवहार करता है।

एक बार एक जगह कुछ लोग बैठे थे। वहां पर पक्षियों की आवाज आ रही थी तो उनमें से पंडित जी ने कहा—अरे वाह! आप सब सुन रहे हैं पक्षी क्या कह रहा है? पक्षी कह रहा है "राम सीता दशरथ, राम सीता दशरथ।" उसमें मुल्लाजी भी बैठे थे उसने कहा—नहीं जी, वह पक्षी तो कह रहा है "सुभान तेरी कुदरत, सुभान तेरी कुदरत।" वहां एक बनिया बैठा था उसने कहा—नहीं, वह पक्षी कह रहा है—"धनिया गोभी अदरक। धनिया गोभी अदरक।" वहां एक पहलवान बैठा था उसने कहा—पक्षी ऐसा भी नहीं कह रहा है। वह तो "दण्ड मुगदर कसरत, दण्ड मुगदर कसरत" कह रहा है।

अब विचार करें, क्या पक्षी यह सब कह रहा था? वह तो अपनी आवाज किये जा रहा था किन्तु लोगों ने अपनी-अपनी मान्यता और धारणानुसार शब्दों का आरोपण कर लिया।

वैसे तो मनुष्य ने जब से होश सम्हाला है और जहां तक का हमारे पास इतिहास है उससे पता चलता है कि थोड़ी-थोड़ी बातों में कटाकटी और मारामारी होती रही है। और आज के इस शिक्षा और विज्ञान विकास के युग में भी मारामारी हो रही है। कभी स्त्री को लेकर तो कभी धन को लेकर, कभी धर्म और ईश्वर-अल्लाह को लेकर। वैसे देखा जाये तो जितनी लड़ाइयां, हिंसा और हत्या धर्म और ईश्वर के नाम पर हुई हैं उतनी धन या स्त्री के लिए नहीं हुई हैं।

हिन्दू कहता है हमारा ईश्वर बड़ा है और हमारे शास्त्रों में जो बातें लिखी हैं वही सही हैं और हमारे अनुसार से जो पूजा-आराधना करेगा उसी को ईश्वर स्वीकार करेगा और इसी आधार पर ही स्वर्ग जाया जा सकता है। दूसरी तरफ मुसलमान कहता है अल्लाह सत्य है और हमारे मोहम्मद साहब ईश्वर (अल्लाह) के रसूल हैं। इनके अनुसार ही इबादत करेंगे और कुरान शरीफ में आस्था और विश्वास रखेंगे तो ही अल्लाताला खुश होंगे और अन्ततः जन्नत बख्सेंगे। अन्यथा तो कोई कितना भी सदाचार और नैतिकता का पालन करता हो उसका दोजख में जाना तय है। और इसीलिए जो इनके अनुसार नहीं चलते उनको बेदीन और काफिर कहते हैं। ऐसे ही यहूदी, ईसाई और दुनिया के जितने भी धर्म हैं उनकी बात है।

इन भोले लोगों को यह समझ नहीं है कि यह जगत एक है तो अल्लाह, परमात्मा या ईश्वर एक ही होगा। यह सब उसके अलग-अलग नाम हैं किन्तु ये नाम को लेकर ही आपस में लड़ रहे हैं। इसीलिए सद्गुरु कबीर साहेब को कहना पड़ा—

भाई रे दुई जगदीश कहाँ ते आया कहु कौने बौराया।
अल्लाह राम करीमा केशव हरि हजरत नाम धराया॥

लेकिन मनुष्य का दम्भ यह है कि मैं जो करता हूं वही सही है। मैं जो मानता हूं वही सही है और जो जानता हूं वही सत्य है, और सब गलत और झूठ है। इसीलिए तो तनातनी है, मारकाट और अफरातफरी है।

सोशल मिडिया पर एक वीडियो वायरल हुआ था। एक बच्चे को उसकी मां कहती है बेटा, आज तुम्हारे दादाजी की बरसी है। जाओ मंदिर के पंडित जी को भोजन दे आओ। वह बच्चा टिफिन लेकर मंदिर जाता है किन्तु मंदिर बंद देखता है, तो वहीं पास में मस्जिद में चला जाता है। वहां मौलवी जी मिलते हैं। बच्चा उनको पूछता है कि—"आप पंडित जी हो?" तो वह मौलवी कहता है—नहीं बेटा, लगता है तुम गलत जगह आ गये हो। तो बच्चा कहता है—"यह गलत जगह है?" तो मौलवी कहता है—नहीं, जगह तो सही है पर आप गलती से यहां आ गये हो। मंदिर अगली वाली गली में है। बच्चा पूछता है—"तो यह क्या है?" मौलवी—"यह मस्जिद है, अल्लाह का दरबार है।" बच्चा फिर पूछता है—"आप कौन हो?" तो वह कहता है—"मौलवी हूं यहां का।"

बच्चा—"तो आप दोनों सेम एक जैसे हो।"

मौलवी—"एक तरह से कह सकते हो।"

बच्चा—"आज मेरे दादाजी की बरसी है। प्लीज, यह खाना खा जीलिए।" मौलवी—मैं क्यों? "क्योंकि आप मस्जिद के पंडित हो न।"

मौलवी जी अवाक रह जाता है और कहता है—"यह खाना मेरे लिए नहीं है।" बच्चा—"पता है, यह खाना दादाजी के लिए है। यह खाना आप यहां खाओगे और वह दादाजी को वहां मिलेगा। उन्होंने एक साल से कुछ नहीं खाया है ।" मौलवी हताश होकर कहता है—'बेटा, तुम मंदिर क्यों नहीं चले जाते?' बच्चा—'मैं गया था। मैं बहुत ढूढ़ा परंतु वहां कोई नहीं था।' मौलवी—बेटा, जो काम पंडित कर सकता है वह मौलवी नहीं कर सकता।

बच्चा—"अभी आप ही ने तो कहा कि आप दोनों सेम हो, बस खाना ही तो खाना है, इसमें लड्डू भी है।"

मौलवी–"तुम समझ क्यों नहीं रहे हो। पंडित और मौलवी सेम होकर भी अलग हैं।"

बच्चा—"आप अल्लाह के नाम से खा सकते हो?"

मौलवी—"यदि मैं खा लिया, पर दादाजी को नहीं मिला तो?"

बच्चा—"क्या आप पंडित जी से कम पावरफुल हो।"

मौलवी— "तुम्हारा काम मंदिर में ही हो सकता है, यहां नहीं।"

बच्चा—"क्यों, मंदिर और मस्जिद में क्या फर्क है?"

मौलवी—"तुम किस भगवान को मानते हो।"

बच्चा—'शिवजी को।"

मौलवी—'क्या शिवजी की पूजा करने के लिए हनुमान मंदिर जाते हो। नहीं न, यही फर्क भगवान और अल्लाह में है।'

बच्चा—"लेकिन मम्मी तो कहती है सारे भगवान एक ही हैं। वैसे अल्लाह कितने हैं?"

मौलवी—अल्लाह तो एक ही है बेटा।

बच्चा—तो आप इतने श्योर कैसे हो, अल्लाह और भगवान सेम नहीं हैं। जैसे मेरी मां मुझे टिक्कू कहती है, मेरे पापा मुझे रॉकी और मेरे दोस्त मुझे राहुल बुलाते हैं लेकिन मैं हूं तो राहुल ही। ऐसे ही शिवजी, हनुमान, अल्लाह सेम ही हैं।

मौलवी—लेकिन यहां अल्लाह ही मिलते हैं।

बच्चा—अल्लाह केवल मस्जिद में ही रहते हैं?

मौलवी—नहीं, वह तो सब जगह है।

रोड पर? हां। सब्जी मार्केट में? हां। दुकान में? हां। मंदिर में? "हां"। मौलवीजी आश्चर्य में हो जाते हैं।

बच्चा—'अच्छा मौलवी जी, अल्लाह मेरी बात सुनेंगे।'

मौलवी—हां बेटा, जरूर सुनेंगे।

बच्चा—'जब अल्लाह मेरी बात सुनने को तैयार हैं तो आप क्यों सुनने को तैयार नहीं हैं।'

मौलवी जी नतमस्तक हो जाते हैं और उस बच्चे के लाये हुए भोजन को खाते हैं और कह उठते हैं—

उम्र जहमत कभी कुछ ऐसा न सिखा पायी।
वह सच्चाई जो इन भोली आंखों ने दिखायी॥

वास्तव में जब हमारी दृष्टि मान्यताओं से बंधी और संकीर्ण होती है तो वह परमात्मा मंदिर या मस्जिद में, गिरजा या गुरुद्वारे में ही दिखाई देता है किन्तु जब हम मान्यताओं की दीवारों को तोड़ देते हैं तब वह सभी प्राणियों में, सभी आत्माओं में दिखाई देता है। सद्गुरु कबीर कहते हैं—

"सब घट मेरा साइयां सूनी सेज न कोय"

जब बसंत ऋतु आती है तब एक त्यागी-तपस्वी वैराग्य के आनंद से अह्लादित होकर कह उठता है—"जाके बारह मास बसंत होय, ताके परमारथ बूझे बिरला कोय।" जिसके जीवन में बारह माह बसंत की स्थिति हो उसके परमार्थ स्थिति को कोई बिरला ही समझ सकता है। क्योंकि जब ज्ञानी के जीवन में ज्ञान की गर्मी बढ़ती जाती है तो उसके मन का नंदन वन हराभरा हो जाता है और आत्मानंद के फूल खिलने लगते हैं। उसमें वह आत्मविभोर हो जाता है और उसके

जीवन में ऐसी मस्तानगी आती है कि उसके सामने संसार के राग-रंग फीके हो जाते हैं।

किन्तु एक संसारी रागी व्यक्ति बसंत आने पर कामवासना से पीड़ित हो जाता है और कह उठता है— "पतझड़ सावन बसंत बहार एक बरस के मौसम चार का इंतजार।" ऐसे समय में यदि उसको उसकी प्रेयसी या प्रियतम न मिले तो तड़पता रहता है।

एक ज्ञानी और वैराग्यवान व्यक्ति खंडहरों में जाता है तो उसे संसार की अंतिम सत्यता का दिग्दर्शन होता है, वह वैराग्य भाव से भर जाता है किन्तु एक रागी प्रकृति का व्यक्ति जब ऐसी जगह जाता है तब उदास और दुखी हो जाता है। इसलिए ऐसी जगह में जाने से वह बचता है।

कहा जाता है सिद्धार्थ गौतम का जन्म हुआ तो एक मुनि ने बताया कि "यह बालक या तो बहुत बड़ा भिक्षु होगा या चक्रवर्ती सम्राट होगा।" यह बात सुनकर सिद्धार्थ के पिता शुद्धोधन चिंतित हो गये क्योंकि उनको प्रौढ़ अवस्था में पुत्र की प्राप्ति हुई थी। वे अपने पुत्र को कदापि संन्यासी या भिक्षु बनने देना नहीं चाहते थे। इसीलिए उन्होंने ऐसे इन्तजाम करवाया जिससे कि उनके मन में राग-रंग और उल्लास की बातें ही भरे। ऐसा कुछ भी सिद्धार्थ को नजर न आये, जिससे उनके अन्दर वैराग्य का अंकुरण फूटे। कहा जाता है, सिद्धार्थ वृद्ध, रोगी और मृत व्यक्ति को न देख पाये ऐसी व्यवस्था की गयी थी। किन्तु सिद्धार्थ अपने सारथी छन्दक के साथ कहीं जाने के लिए निकले और वृद्ध, रोगी और मृतक को देखकर उनके अन्दर हलचल मच गयी—क्या मैं भी वृद्ध हो सकता हूं? क्या मैं भी रोगी हो सकता हूं? क्या मैं भी मर सकता हूं? चिंतन शुरू हुआ और अंततः सिद्धार्थ बुद्ध हो गये। यह सब तो सब लोग देखते हैं किन्तु वैराग्य कहां उदय होता है। निश्चित ही कोई अपना नजदीक का व्यक्ति बीमार होता है या मर जाता है तो लगता है शरीर और संसार क्षणभंगुर और नाशवान है। किन्तु कुछ समय में सब भूल जाते हैं और उसी राग-रंग की दुनिया में मस्त हो जाते हैं।

जब हम समुद्र किनारे जाते हैं और समुद्र की तरफ देखते हैं तो जल ही जल दिखाई देता है। जहां तक हमारी नजर जाती है जल के अलावा कुछ नहीं दिखाई देता किन्तु जब हम उधर से पीठ कर देते हैं तब धरती दिखाई देती है फिर जहां तक हमारी दृष्टि जाती है भूमि, पर्वत, वन आदि दिखाई देते हैं। आंखें फेर लेने से दृश्य बदल जाता है। ठीक ऐसे ही जब हम मन में सकारात्मक या द्वेषात्मक भाव लेकर जगत को देखते हैं तो जगत वैसा ही दिखाई देता है। किन्तु इन भावनाओं को हटाकर सहज भाव से देखते हैं तो जगत कुछ और ही दिखाई देता है। वास्तव में जैसी सृष्टि होती है वैसी ही दृष्टि होती है।

प्रसिद्ध सूफी संत राबिया के लिए कहा जाता है कि वह इतनी निर्मल हृदय की हो चुकी थी कि सबमें अल्लाह के नूर को ही देखती थी। उन्होंने अपनी धर्म किताब में कुछ काट दिया था। उनके यहां दूसरे सूफी संत का आगमन हुआ तो उन्होंने ग्रंथ में कटा वाक्य देखकर उत्तेजित होकर कहा कि इसमें वाक्य काटने की किसने गुस्ताखी की है? उसमें वाक्य था "अल्लाह से प्रेम करो, शैतान से नहीं।" राबिया ने 'शैतान से नहीं' उस वाक्य को काट दिया था। इसी बात को लेकर फकीर नाराज हो गया था। राबिया ने कहा—मुझे तो कोई शैतान दिखता ही नहीं, सभी अल्लाह के बंदे हैं। सभी के अन्दर उनका ही नूर है।

वास्तव में मेरा और पराया, राग और द्वेष, राम और रहीम, हिन्दू और मुसलमान संकीर्ण और संकुचित मानसिकता की ही उपज हैं। जब हमारी आंखों में मैं और मेरापन का आवरण आ जाता है, मान्यता का आवरण आ जाता है तो हमारी दृष्टि भी दूषित हो जाती है, फिर हम जो कुछ भी देखते, सुनते और जानते हैं वह साफ, निष्पक्षतापूर्ण और सत्य नहीं रह जाता है।

हमें सत्य समझने के लिए मान्यताओं से ऊपर उठ कर निष्पक्षतापूर्ण दृष्टि रखनी होगी। पूर्वाग्रह छोड़कर निष्पक्ष होकर ही सत्य और तथ्य को समझा जा सकता है और इसी में मन में संतोष और सुख भी होगा। ❑

कहानी

इंसानियत

लेखक—श्री विजय चितौरी

गर्मी और उमस के कारण "गुप्ता मेडिकल स्टोर" तक पहुंचते-पहुंचते गुरु जी का बुरा हाल हो गया। सारा शरीर पसीने से भीग गया। मानो किसी ने उनके ऊपर बाल्टी भर पानी उड़ेल दिया हो। साइकिल चलाकर आने से वे हांफने भी लगे थे। उन्होंने पीपल के तने से सटाकर साइकिल खड़ी कर दी। वहीं खड़े हो सिर पर लपेटी रूमाल उतारी। उससे हाथ-पैर और चेहरे को पोंछा। फिर उसी से हवा झलते-झलते आकर पत्थर की चटिया पर बैठ गये।

स्टोर के सामने का यह स्थान राहगीरों की पसंदीदा जगह है। यहां पीपल की घनी छाया है। चाय-पान की दुकान है। यही नहीं हैण्डपम्प की भी व्यवस्था है। गुप्ता जी ने भी राहगीरों और अपने मरीजों का खास ख्याल रखा है। उन्होंने यहां बैठने के लिए कई पत्थर की चटिया रखवा दी है।

गुरु जी अवकाश प्राप्त शिक्षक हैं। साल भर पहले ही पड़ोसी जिले के एक माध्यमिक विद्यालय से रिटायर हुए हैं। नाम ताराचन्द शर्मा है लेकिन क्षेत्र में सब लोग उन्हें "गुरु जी" सम्बोधन से ही बुलाते हैं। इस कस्बे से करीब दो किलोमीटर दूर एक गांव में रहते हैं। दिन भर घर-गृहस्थी में व्यस्त रहते हैं। लेकिन शाम को बाजार जरूर आते हैं। यहां वे गुप्ता मेडिकल स्टोर के सामने इसी स्थान पर बैठते हैं। दो-चार लोग और आ जाते हैं। घंटे-दो घंटे गप-शप करते हैं। सभी एक-एक प्याली चाय पीते हैं फिर अपने-अपने घर चले जाते हैं।

गुरु जी जैसे ही थोड़ा सामान्य हुए उनकी निगाह सामने बैठी औरत और उसके बीमार बेटे पर गयी। सूखे चेहरे और पहनावे से उनकी गरीबी साफ झलक रही थी। साथ में एक औरत और थी। वह भी काफी गरीब दिख रही थी। औरत का बीमार बेटा पांच-छः साल का रहा होगा। उसका पेट सूजा हुआ था, हाथ-पांव पतले हो गये थे और आंखें चेहरे में धंसी हुई थीं। यही नहीं उसे सांस लेने में तकलीफ भी हो रही थी।

गुरु जी ने साथ वाली औरत से पूछा, "बच्चे की हालत ठीक नहीं लग रही है। इसे गुप्ता जी को दिखाओगी क्या...?"

वह औरत कुछ जवाब देती इसके पहले ही गुरु जी उठकर बच्चे के पास पहुंच गये। उसके मस्तक को स्पर्श किया। बोले : "इसे तो बुखार भी है...।" साथ वाली औरत खड़ी हो गयी। अपनेपन से बोली : "काका! भगवान किसी को कोई भी दण्ड दे लेकिन गरीब न बनाये। इस बेचारी की गरीबी के कारण ही हाथ से यह लड़का निकला जा रहा है...।"

औरत की बात से गुरु जी को झटका-सा लगा। खड़े हो थोड़ी देर सोचते रहे। फिर बगल चाय की दुकान तक गये। वहां से मग में पानी लेकर लौटे। औरत को मग पकड़ाते हुए बोले : "बच्चे को पानी पिला दो। गर्मी बहुत है...।"

गुरु जी की आत्मीयता से दोनों औरतें काफी प्रभावित हुईं। बच्चे की मां ने उसका मुंह धुलाया और पानी पिलाया। गुरु जी ने पूछा : "किसी अच्छे डॉक्टर को नहीं दिखाया?"

"अच्छे डॉक्टर तो मंहगे होते हैं काका।" साथ वाली औरत ने जवाब दिया। आगे उसने कहा : अच्छे डॉक्टर सौ-दो सौ तो फीस के ही ले लेते हैं। तमाम जांच-पड़ताल करवाते हैं। तब जाकर दवा देते हैं। इस बेचारी के पास इतने पैसे कहां?

"सरकारी अस्पताल तो है।"

"कई बार तो गई। डॉक्टर कभी मिलते नहीं। अन्य कर्मचारी होते हैं। गोली, कैप्सूल दे देते हैं। पैसा तो वहां नहीं लगता लेकिन कोई फायदा भी नहीं होता।"

"घर में कोई आदमी नहीं है?"

"नहीं काका, यही तो और परेशानी है। आदमी था, साल भर पहले बीमारी में मर गया। यह इकलौता बेटा है। पेट चलाने के लिए इस बेचारी को मजूरी करनी पड़ती है। सही देखभाल न होने से ही इस बच्चे की यह हालत हुई है।"

"तुम कौन हो इसकी?"

"मैं तो इसकी पड़ोसन हूं। सुख-दुख में अड़ोसी-पड़ोसी ही तो मदद करते हैं।"

"कहां से आयी हो?"

"पीपलगांव से काका! यहां से चार-पांच किलोमीटर दूर है। और काका, आप कहां के रहने वाले हैं?"

"बिटिया, मैं तो मलखानपुर का हूं। यहां से दो-ढाई किलोमीटर दूरी पर है।"

शब्द बड़े शक्तिशाली होते हैं। बुजुर्ग द्वारा "बिटिया" सम्बोधन से दोनों महिलाओं की आत्मीयता बुजुर्ग के प्रति बढ़ गयी। इस शब्द ने बच्चे की मां के हृदय के किसी नाजुक तार को झंकृत कर दिया। संभवतः उसे अपने पिता या माता की याद हो आयी हो। उसकी आंखें भर आयीं। उसने आंख पोंछी, भर्राई आवाज में गुरु जी से बोली : "बाबा, कुछ आप ही उपाय बताएं। हमारा आगे-पीछे अब कोई नहीं है। न नैहर में और न सासुर में। बस यही एक सन्तान है...।"

गुरु जी बच्चे की मां की बात पर कुछ प्रतिक्रिया व्यक्त करते कि इसी समय मेडिकल स्टोर के मालिक गुप्ता जी अभिवादन की मुद्रा में आ खड़े हुए। विनयभाव से बोले : "गुरु जी, आप देर से यहां बैठे हैं। कुछ परेशान-जैसे लग रहे हैं। और ये औरतें...? बताएं हमारे लायक कोई सेवा हो तो...?"

"गुप्ता जी, अच्छा हुआ आप आ गये। अभी मैं आपसे राय लेने ही वाला था। यह बच्चा देख रहे हो। हालत काफी खराब है। शायद पहले भी यह औरत आपके पास आ चुकी है। बेटा, इस बच्चे की जान बचानी है। आप कोई उचित राय दो।"

गुप्ता जी आकर गुरु जी के बगल बैठ गये। बोले : "हां, गुरु जी, यह औरत पहले भी आयी थी। संभवतः इस बच्चे को टी बी है। कुछ और भी बीमारियां होंगी। मैंने किसी अच्छे डॉक्टर को दिखाने को कहा था। उस समय कुछ कामचलाऊ दवाएं दी थी। संभवतः दो-ढाई महीने हो गये।"

"बेटा, गरीबी आदमी को बेबस कर देती है। पास में पैसा होता तो यह जरूर अब तक किसी अच्छे डॉक्टर को दिखा चुकी होती। खैर, जो हुआ सो हुआ। अब बताओ अब क्या हो सकता है?"

"थोड़ी दूर पर आगे 'अनिल मेडिकल स्टोर' है। स्टोर के सामने कार खड़ी दिख रही है। वहां अभी कुछ माह पहले से एक अच्छे डॉक्टर 'डॉ. कुमार' बाहर से आने लगे हैं। मैं समझता हूं इस बच्चे को उन्हीं को दिखाना चाहिए। आज डॉक्टर उपस्थित भी हैं। ठीक सात बजे यहां से चले जाते हैं।"

अब तक मेडिकल स्टोर के काउंटर पर दवा लेने के इच्छुक कई लोग आ जुटे थे। गुप्ता जी ने गुरु जी को पुनः अभिवादन किया और अपने स्टोर पर चले गये। गुरु जी ने देर नहीं लगाई, औरतों से बोले : "गुप्ता जी ठीक कह रहे हैं। तुम लोग बच्चे को लेकर वहीं चलो। बिना अच्छे डॉक्टर को दिखाये और बिना जांच-पड़ताल करवाये कोई फायदा नहीं होगा।"

औरतें कभी गुरु जी को देखतीं तो कभी जमीन की ओर और कभी आपस में एक दूसरे को। उनको उठते न देख गुरु जी ने पूछा : "आखिर दिक्कत क्या है, बताओ न?"

साथ वाली औरत ने जवाब दिया : "बाबा, कुल पचास रुपये हैं हम लोगों के पास। इतने में तो उसकी फीस भी न होगी।"

"ओह, तो यह बात है। पर्याप्त पैसे तो मेरे जेब में भी नहीं हैं। खैर कोई बात नहीं। चलो तुम लोग चलकर बच्चे को दिखाओ। अभी आधा-पौन घंटे का समय है। तब तक मैं पैसा लेकर आ जाऊंगा।"

औरतों ने एक दूसरे को देखा। लेटे हुए बच्चे को उठाया और डॉक्टर की ओर चल पड़ी। गुरु जी भी उठ खड़े हुए। सिर में गमछा लपेटा और साइकिल ले घर की ओर चल पड़े।

डॉ. कुमार की फीस सौ रुपये हैं। जबकि औरत के पास कुल पचास रुपये ही हैं। वह बच्चे को दिखाये तो कैसे दिखाये? इसी असमंजस में बैठी गुरु जी की प्रतीक्षा करती रही। सारे मरीज अब तक जा चुके थे। आखिरकार डॉक्टर को ही इस अंतिम मरीज को अपने पास बुलाना पड़ा।

मां ने बच्चे को सहारा दिया। बच्चा मेज पर पीठ के बल लेट गया। पर्चा बनाने के लिए डॉक्टर ने महिला से बच्चे का नाम और उम्र पूछा। फिर सौ रुपये फीस मांगी। दोनों महिलाएं असमंजस में पड़ गयीं। पैसे तो कुल पचास ही थे। साथ वाली महिला बोली : "डॉक्टर साहब, बच्चे को देख लें। साथ में एक सयाने हैं, बस आने ही वाले हैं। फीस दे देंगे।"

डॉक्टर का उत्साह ठंडा पड़ गया। कुछ देर तक बिसूरता बैठा रहा। फिर उठा। गले में लटकाये स्टेथेस्कोप से उसने बच्चे की छाती की जांच की, उसकी आंख की पलकों को फैलाकर आंख का परीक्षण किया। उसका हाथ पकड़कर नब्ज टटोली और आकर अपनी कुर्सी पर बैठ गया।

मां ने पुनः बच्चे को सहारा दिया और उठाकर उसे थोड़ी दूर रखे तख्त पर लिटा दिया। बच्चा अब भी काफी बेचैन था। उसकी सांस तेज चल रही थी। वह बार-बार करवट बदल रहा था। महिला बच्चे को वहीं छोड़ डाक्टर के बगल आकर खड़ी हो गयी।

डॉक्टर अब तक पर्चा बना चुका था। महिला को पास आया देख बोला : "क्या हुआ, पैसा आया?"

"अभी तो नहीं। बस आते ही होंगे डॉक्टर साहब!"

डॉक्टर झुंझला उठा। बड़बड़ाया : "कैसे-कैसे लोग चले आते हैं...।" घर लौटने के लिए वह अपना सामान समेटने लगा।

मेडिकल स्टोर के मालिक अनिल काउंटर पर बैठे-बैठे यह सब देख रहे थे। उन्होंने भी अपना दायित्व निभाया। आते ही दोनों महिलाओं पर बरस पड़े : "जब पैसा नहीं था, तब काहे यहां आयीं? तुम लोगों को कोई झोला छाप डॉक्टर नहीं मिला...?"

दोनों महिलाएं भय और अपमान से कांपने लगीं। बेटे की मां ने आंचल के कोने में बंधी एक गांठ खोली। उसमें एक मुड़ा-तुड़ा पचास का नोट था। उसे ही डॉक्टर के सामने रख दिया। डॉक्टर ने वह नोट देखा तो और भी जलभुन गया। बोला कुछ नहीं, बैठा रहा। लेकिन स्टोर मालिक अनिल की क्रोधाग्नि भभक उठी। आंखें निकाल कर बोला : "चलो खिसको यहां से। अपने बच्चे को भी उठाओ। आइंदा इस तरफ कभी ताकना मत...।"

दोनों औरतें रुआंसी हो गयी। बच्चे की मां की उंगली में एक चांदी की अंगूठी थी। उसने धीरे से उस अंगूठी को निकाला और पचास के नोट के ऊपर रख दिया। पीछे मुड़ी, बच्चे को उठाया और साथ वाली महिला के साथ क्लीनिक से बाहर आ गयी।

ठीक इसी समय गुरु जी वहां पहुंच गये। साइकिल चलाकर आये थे। सारा शरीर पसीने से तर-बतर था। हांफ रहे थे। औरतों की रूआंसी-रूआंसी सूरत देखी तो घबड़ाये। साथ वाली औरत से पूछा : "क्या हुआ बेटी...।"

"काका, फीस की खातिर अपमानित होना पड़ा। पचास रुपया और अंगूठी डॉक्टर की मेज पर रख दिया है...।"

"अच्छा थोड़ा रुको, मैं तुरन्त आया" कहते हुए वे क्लीनिक में घुस गये। डॉक्टर अभी भी मौन बैठे हुए थे। बगल की कुर्सी पर स्टोर मालिक अनिल थे।

बुजुर्ग को देखते ही डॉक्टर कुमार सकपकाए। दिमाग बहुत तेज दौड़ने लगा। उन्हें बुजुर्ग का चेहरा कुछ जाना-पहचाना लगा। गुरु जी की भी यही स्थिति थी। उन्हें भी लगा कि पहले कभी इस डॉक्टर को देखा है।

डॉक्टर कुमार खड़े हो गये। मुंह से निकला : "आप शर्मा सर तो नहीं हैं...?"

"ओह! तो तुम राजीव कुमार हो। डॉ. राजीव कुमार।" बुजुर्ग के मुंह से निकला।

डॉक्टर ने आगे बढ़कर गुरु जी को सिर झुकाया और नमस्कार किया। अपनी कुर्सी उनकी ओर बढ़ा दी। बोला : "सर, आप इसी क्षेत्र के रहने वाले हैं क्या?" डॉक्टर के सवाल पर गुरु जी ने कोई ध्यान नहीं दिया। व्यंग्य भरे स्वर में बोले : "राजीव, अब तुम सही मायने में आधुनिक डॉक्टर बन गये हो जो पैसे के लिए कुछ भी कर सकता है...।"

डॉक्टर सकपकाया। बोला : "सर, आपकी बात समझा नहीं...?"

"सामने मेज पर रखा यह नोट और इस पर रखी अंगूठी को देखकर भी नहीं समझ में आया...?"

"ओह... सर... वो एक गरीब औरत...।"

"हां, उसी की बात कह रहा हूं...।"

गुरु जी ने जेब से सौ का नोट निकाला, मेज पर रखा और पहले से रखा पचास का नोट और अंगूठी हाथ में उठा लिया।

"सर..., उस औरत से आपका कोई रिश्ता...?"

"हां..., है रिश्ता। इन्सानियत का रिश्ता...? भूल गये, कभी यही रिश्ता मैंने तुम्हारे साथ भी निभाया था, बेटे, जब डॉक्टरी की प्रवेश परीक्षा में फीस भरने के लिए तुम्हारे पास पैसे नहीं थे।"

"ओह...!" डॉक्टर को झटका-सा लगा। दिमाग मानो सुन्न हो गया हो। धम्म से कुर्सी पर गिर पड़ा। थोड़ी देर बाद जब उसे होश आया तो दौड़कर क्लीनिक के बाहर झांका। लेकिन वहां न तो गुरु जी दिखे और न वे औरतें।

(गंजेड़ियन तारा से साभार)

सकारात्मक सोच

प्रस्तोता-श्री शंकरलाल माहेश्वरी

रामधन को कौन नहीं जानता। रिक्शा चलाते हुए बीस बरस हो गये। शहर का बच्चा-बच्चा रामधन को सर-आंखों पर बिठाता है। वह बच्चों का प्यारा-दुलारा जो है। यदि कोई बच्चा बीमार हो गया हो, स्कूल की बस छूट गयी हो, कभी बच्चों में परस्पर झगड़ा हो गया हो, घर में अकेला रह गया हो, बच्चे को अस्पताल ले जाना हो, बस्ते का वजन ज्यादा हो तो रामधन को बुला लो। वह सदैव तैयार मिलेगा। बशर्ते कि वह किसी सवारी को कहीं ले नहीं जा रहा हो। यदि आपको उसे बुलाना है तो आपके पास उसके फोन नम्बर जरूर होंगे। यदि न भी हो तो चिन्ता की कोई बात नहीं। राह चलते किसी भी आदमी से, किसी मजदूर से, दुकानदार से, नौकरी पेशावाले से या ठेलावाले—किसी से भी उसका नम्बर पूछ लो, बता देगा। आदमी कामवाला है न। बुलाने पर तत्काल पहुंच जाता है रिक्शा लेकर आपके पास। यदि आपको रेलवे स्टेशन पर जाने की जल्दी हो, बस पकड़नी हो, बैंक में जाने को साधन नहीं हो तो रामधन की सेवाएं प्रस्तुत हैं।

उस दिन सोनी अस्पताल में एक महिला रोगी को खून की जरूरत थी। मुझे खून देना था। जाने का साधन रात के ग्यारह बजे भला कैसे सम्भव है। तत्काल रामधन को फोन किया तो उत्तर मिला, 'बाबूजी! रोडवेज वाले चौराहे पर हूं। अभी आया, जल्दी हो तो आप चौराहे की ओर आइये और मैं इधर से प्रस्थान कर

रहा हूं। आप निश्चिन्त रहिये, दस मिनट भी नहीं लगेंगे अस्पताल पहुंचने में।'

देखते-ही-देखते रामधन का रिक्शा आंख झपकते ही सामने आ खड़ा हुआ और चल दिया अस्पताल की ओर। रामधन सभी आवश्यक स्थानों का पूरा रास्ता जानता है। खुशमिजाज रामधन पूछने लगा—

'बाबूजी! घरपर सब ठीक-ठाक तो है ना! इस भाग-दौड़ की जिन्दगी में किसी को बात करने की भी फुरसत नहीं मिलती। मैं तो रोज देखता हूं, रास्ते सुनसान नहीं रहते। भीड़-भरे रास्तों में कई बार वाहनों की रेलमपेल में दुर्घटना का खतरा बना रहता है। यह तो बरसों रिक्शा चलाते-चलाते मेरा हाथ साफ हो गया है, नहीं तो रोज ही एक्सीडेंट का खतरा बना रहता है।' बातचीत चल ही रही थी कि सामने से एक टैक्सीवाला तेज गति से गलत साइड से आ रहा था। उसकी टैक्सी का पिछला भाग मेरे रिक्शे से टकराते-टकराते बचा। टैक्सीवाला रुका तब रामधन ने कहा, 'भैया! गलत साइड मत चला करो', किन्तु वह नौजवान अपनी गलती नहीं मानते हुए कहने लगा—'तुम्हें दिखाई नहीं दे रहा था कि मैं सामने से आ रहा हूं। बेवकूफ कहीं के। रिक्शा चलाना नहीं आता तो क्यों चलाते हो' और क्रोधित होकर गालियों की बरसात करने लगा। रामधन कुछ नहीं बोला, मुस्कराता रहा, कहने लगा—'भैया जी! गलती हो गयी। माफ करना। मैं आपसे क्षमा चाहता हूं।'

'चोरी और सीनाजोरी' वाली कहावत को चरितार्थ होते देखकर मैंने रामधन से कहा—'भैया! गलती उसकी थी, गलत साइड से वह आ रहा था और सटकर निकलना क्या उसकी गलती नहीं थी। तुम तो रामधन बहुत सीधे हो। उसकी गालियां सुनते रहे और क्षमा मांगते रहे। ऐसा क्यों? ईंट का जवाब पत्थर से देना चाहिए था।'

'बाबूजी! दुनिया में बहुत-से लोग स्वच्छ भारत मिशन के कूड़ा-कचरे से भरे ट्रक की तरह होते हैं। वे लोग बहुत सारा कूड़ा अपने दिमाग में भरकर चलते हैं। जिन चीजों की जीवन में आवश्यकता ही नहीं होती, उन्हें भी वे ढोते रहते हैं जैसे क्रोध, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, तनाव, निराशा, चिन्ता, अहंकार आदि उनके दिमाग में कूड़े की तरह भरा रहता है और जब यह कूड़ा अधिक हो जाता है, तो वे अपना बोझ कम करने के लिए दूसरों पर फेंकने का अवसर ढूंढ़ते रहते हैं, इसलिए मैं ऐसे लोगों से दूरी बनाये रखता हूं; क्योंकि उनके द्वारा गिराया गया कूड़ा मैंने स्वीकार कर लिया तो मैं भी स्वच्छता मिशनवाला कूड़े का ट्रक बन जाऊंगा। स्वच्छ भारत मिशन की तरह मानसिक सफाई अभियान आवश्यक है, ताकि लोगों के मन-मस्तिष्क से कूड़ा हट सके और अपने पास-पड़ोस के लोगों पर कूड़ा गिरता न रहे। मेरी सोच है कि यह जिन्दगी बड़ी खूबसूरत है, अतः जो हमसे अच्छा व्यवहार करते हैं, उन्हें धन्यवाद कहो और जो अच्छा व्यवहार नहीं करते, उन्हें मुस्कराकर माफ कर दो। बाबू साहब! सभी रोगी अस्पताल में नहीं होते, कुछ मानसिक रोगी हमारे इर्द-गिर्द खुले में घूमते रहते हैं। आप जानते हैं यदि खेत में बीज नहीं डाला जाये तो प्रकृति उसे घास-फूस से भर देती है। इसी तरह यदि मस्तिष्क में सकारात्मक विचार नहीं भरे जायें तो नकारात्मक विचार उनकी जगह बना लेंगे। यह सही है कि जिसके पास जो होता है, वही तो बांटता है। ज्ञानी ज्ञान बांटता है और भ्रमित भ्रम बांटता है।

इसीलिए मैं सकारात्मक सोच के साथ गलती सामने वाले की होने पर भी मुस्कराकर क्षमा मांगने में अपना हित समझता हूं।'

रामधन की यह सकारात्मक सोच मुझे जीवन की बहुत बड़ी सीख दे गयी, जो हर मानव के लिए हितकर है।

—('कल्याण' से साभार)

सकारात्मक सोच ऐसा टॉनिक है जो मनुष्य के तन-मन दोनों को ऊर्जावान बना देता है। सदैव सकारात्मक सोचें, मन सदैव प्रसन्नता और आनन्द से भरा रहेगा।

परमार्थ पथ

सद्‌गुरु ज्ञान ठिकाना है

पूर्व के जितने मोहक संबंध हुए हैं, वे कुछ दिनों में फीके हो गये हैं। सुंदर युवक या युवती कुछ दिनों में नीरस, बेढंगे, रूखे और व्यर्थ हो जाते हैं। जो वस्तुएं बहुत प्यारी लगती थीं, वे पीछे बेकार लगने लगती हैं। जो परिस्थितियां मनोरम लगती थीं, वे अनसुहाती हुई हैं। अतएव अपने पूर्व और पर के अनुभव से अच्छी सीख लेना चाहिए। सारा संयोग ही अंततः झूठा है। इसलिए किसी संबंध में हर्ष या शोक करना भयंकर भूल है। मोह का आवरण संसार का बीज है। जो संसृति से पूर्ण तर जाना चाहे वह मोह-बीज को ज्ञान-वैराग्य की अग्नि में भस्म कर दे, और जब तक जीवन है, हरक्षण सावधान रहे; कहीं इस क्षणिक तथा झूठे संबंध में मोह न बनने दे।

* * *

सारा दृश्य भागा जा रहा है। अपना माना गया शरीर से लेकर सारा दृश्यमान संसार बड़े वेगपूर्वक भागा जा रहा है। जो भाग रहा है, वही दृश्य है, दिखता है। उसी में अनादि काल से मोह करने की आदत है। उसी का फल चित्त की चंचलता है, जो दुखपूर्ण है। अंततः कुछ मेरे पास रहने वाला नहीं है, तब किसमें राग किया जाये! अतएव सारे दृश्यों से सब समय उदासीन रहने से ही अपने आप में विश्राम मिलेगा। अपना स्वरूप सबका द्रष्टा है और सबसे परे है। उसमें दुख का लेश नहीं है। अतएव जिसका मन अपने आप में, आत्मा में रहता है, वह दुखों से रहित रहता है।

* * *

दुखों के कारण हमारे मन के लोभ, मोह, क्रोध, काम आदि मानसिक विकार हैं। हमारी असावधानी, हमारे मन का प्रलोभन, हमारे मन का भ्रम हमें दुख देते हैं। इन सब में श्रेष्ठ शत्रु अहंकार है। हमारे मन का अहंकार हमें रुलाता है। मनुष्य को यह भूल जाना चाहिए कि मेरे दुखों का कारण बाहरी प्राणी-पदार्थ हैं। मेरे संपूर्ण दुखों का कारण एकमात्र मेरे मन का अहंकार है। जो साधक अपने मन के अहंकार को मार डालता है, वह परमानंद का अनुभव करता है। अहंकार तो हमारे शत्रुओं में महा बलवान राजा है। इसी के जन-बच्चे काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, संशय, संदेह, भ्रम आदि हैं। कुल मिलाकर हमारे मन का पाप ही हमें दुख देता है। जो अपने मन के पाप को जीत लेता है वह सुखी हो जाता है।

* * *

सबका संबंध क्षणिक है। संबंध में मोह और वैर, राग और द्वेष, लाभ और हानि आदि की उत्तेजना में पड़ने से मन खराब होता है, वाणी खराब होती है और कर्म खराब होता है। इन सबका फल चित्त की चंचलता और पश्चाताप में जलना होता है। याद रखो, कुछ रह नहीं जायेगा; और इन न रह जाने वाले संबंधों में तुम उत्तेजित होकर अपने को खोते हो। तुम्हारी बहादुरी है कि तुम्हारे में कंपन न उत्पन्न हो। तुम्हें लगे कि मानो कुछ है ही नहीं। यह जीवन ही मानो नहीं है; क्योंकि यह आज-कल में नहीं रह जायेगा। जो नहीं रह जाने वाला है उसको पहले ही से नहीं रूप देखने वाला कंपित नहीं होता। याद रहे, इस भाववाले व्यक्ति का व्यवहार स्वस्थ होता है।

* * *

नीम के पेड़ को दूध से सींचने पर भी उसका कड़वापन नहीं जा सकता। इसी प्रकार कितने लोग हैं जो बहुत दिन के भक्त या साधु हैं, ज्ञानी हैं, अन्य ज्ञानियों के ज्ञान भी सुनते हैं, स्वयं ज्ञान की बातें कहते हैं, किंतु उनका कड़वापन ज्यों-का-त्यों बना रहता है। अतएव ऐसे साथियों से भी सभ्य भाषा की आशा करना निरर्थक है। सच तो यह है कि हमें ऐसी आत्मस्थिति के धरातल पर जीना चाहिए जिसमें निकट और दूर, किसी के अप्रिय व्यवहार मन को प्रभावित न कर सकें। दूसरे

को देखने की आवश्यकता ही नहीं है। मेरे पास दूसरा द्वैत है ही नहीं। मैं तो मूलतः अद्वैत हूं। अकेला और असंग हूं।

* * *

तृष्णा-त्याग से परम शांति मिलती है। धन बढ़ाने वाले उसी की तृष्णा में जल-जल कर मर जाते हैं। संतान और अनुगामी की तृष्णा वाले उसी में उलझकर अशांति में मरते हैं। धर्म-प्रचार की तृष्णा वाले इसी में भटकते हुए मरते हैं। याद रखो, धन की आवश्यकता है, गृहस्थ को संतानें होती हैं, धर्मियों के अनुगामी होते हैं। धर्म-प्रचारकों को धर्म-प्रचार करना चाहिए; परंतु तृष्णा कहीं नहीं होना चाहिए। हमारे जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है गहरी शांति। इसके अलावा जो कुछ है सब छूट जाने वाला है। यदि हम गहरी शांति रूपी अगाध अमृत में जी रहे हैं, तो सब कुछ प्राप्त है। यह होगा सब प्रकार की तृष्णा का त्याग करने पर। परम प्रसन्नता एवं परमानन्द में सब समय जीयो, यही जीवन फल है।

* * *

यह चेतन पुरुष इस पापपूर्ण, दुखद तथा अनात्म शरीर को क्यों ढोता है? अनादिकाल से यह चक्कर चल रहा है। अब इसकी असारता, दुखरूपता, अनात्मता, अनित्यता और निरर्थकता को समझकर इससे पूर्ण निर्मोह हो जाना चाहिए। मैं निर्लेप, शुद्ध-बुद्ध चेतन हूं। मेरे स्वरूप में जड़-प्रकृति कारण-कार्य-प्रवाह नहीं है। मैं तो असंग हूं। इस असंगता को समझकर अपने आप में पूर्ण संतुष्ट हो जाना चाहिए। यही आत्मतृप्त, कृतार्थ दशा है। इस कूड़े-कचड़े संसार से अपने को उबार लो। अंततः देह छूटते ही सारा तमाशा समाप्त हो जायेगा। अतएव इस तमाशा को पहले से ही चित्त से उतार दो।

* * *

अब कुछ परेशानी नहीं रही। सारी परेशानी अपने मन के विकारों से होती है। विषय दुख देते हैं। विषयों से पार हो जाने पर दुख नहीं रहता। विषयों से पार हो जाने के तात्पर्य दो ढंग से हैं। विषयों का मोह न रहना और मन स्मरण-रहित रहना। विवेकवान सब समय विषयों के मोह से रहित रहता है; परंतु स्मरण-रहित समय-समय में हुआ जा सकता है। जिसका मन निर्विषय है, अनासक्त है, वह सुखी है, किंतु जब मन स्मरण-रहित पूर्ण स्थिर रहता है, तब यह पूर्ण शांति की अवस्था है। पदार्थ विषय है। जब मन में कोई पदार्थ नहीं रहता, तब पूर्ण शांति पद है।

* * *

मनुष्य को समय की प्रतीक्षा करना चाहिए। हड़बड़ा कर एक ही समय में अपने सारे लक्ष्यों को पाने की लालसा दुख उत्पन्न करती है। धैर्य ही सारे विघ्नों पर विजय करने की साधना है। जो काम वर्तमान में सिर पटकने पर भी नहीं होता, वह समय आने पर अपने आप हो जाता है। जो काम जोर देकर करने योग्य है वह है मन को निर्विषय करना। इस संसार में कुछ है नहीं जो अपना हो। इसलिए इस छूटने वाले संसार में अपना मन न लगावे। अपना मन सदैव अपने आप में लगावे। जीवन भागा जा रहा है। इसके लिए आगे बहुत दिन बने रहने की कामना और विश्वास करना भयंकर धोखा है, अपने आप में लीन होना जीवन का फल है।

* * *

बहुत सोचा, बहुत बोला, बहुत सूंघा, बहुत खाया, बहुत छुआ, बहुत सुना, बहुत देखा और बहुत घूमा और किया। इन सबका फल मन की भयंकर व्याधि बनी। इस कूड़ेदान संसार में भटकते-भटकते पाने के नाम पर खुराफात पाया। बाहर की जो चीज मिली, वह छूटी। कुछ साथ में नहीं रहा। साथ में इन सबकी वासना रही जो निरंतर हमें पीड़ित करती रही। इस तथ्य पर हमें गहराई से विचार करना चाहिए। जीवन का फल क्या है? क्या बाह्य उपलब्धि है? बाह्य उपलब्धियों से तो मानसिक व्याधियों का जखीरा मिलता है। जीवन का फल गहरी शांति है जो सच्चा सुख है। यह दिव्य स्थिति सर्वत्याग से मिलती है। ❑

कितने दिन जीना ठीक है?

प्रायः हर आदमी के मन में यही होता है कि मैं लंबे समय तक जीवित रहूं। यद्यपि हम सब देखते हैं कि किसी भी उम्र में मनुष्य का शरीर छूट जाता है। गर्भ से ही शरीर का छूटना शुरू हो जाता है। कितने बच्चे गर्भ में ही मर जाते हैं, कितने पैदा होने के तुरंत बाद और कितने साल-दो साल बाद मर जाते हैं। हर उम्र में आदमी का शरीर छूटता है।

जो अस्सी साल का हो जाता है, वह सोचता है कि अभी तो मैं अस्सी साल का हूं लोग तो पचासी-नब्बे साल तक जीवित रहते हैं। अभी तो मैं पांच-दस साल और जीवित रह सकता हूं। नब्बे वर्ष की उम्र वाले सोचते हैं कि लोग सौ साल तक भी जी लेते हैं। अभी तो मेरी मात्र नब्बे साल की उम्र है। ऐसे विचार आदमी के मन में उठा करते हैं।

लेकिन प्रश्न यह है कि लम्बी उम्र तक जीवित रहकर किया क्या जायेगा? फायदा क्या होगा? मार्क्स आरेलियस जो आज से करीब अट्ठारह सौ साल पहले रोम के सम्राट हुए हैं किसी साधक से कम नहीं थे। उन्होंने अपनी डायरी में अपने को ही समझाते हुए लिखा है—"तुम बहुत दिनों तक जीवित रहना चाहते हो, लेकिन बहुत दिनों तक जीवित रहने से क्या फायदा होगा? बहुत दिनों तक जीवित रहने में एक ही फायदा है कि अधिक से अधिक लोगों की शवयात्रा में शामिल होने का लाभ मिल जायेगा।"

लोगों को मरते देखकर शरीर-संसार से उदासीनता हो, मोह घटे तब तो कुछ काम बने। लेकिन देखते हैं कि लोग रोज दुनिया छोड़-छोड़कर जा रहे हैं और जैसे ही आंखें बंद हुईं उनका अपना माना हुआ सब कुछ सदा के लिए छूट जाता है। फिर न वे अपने घर में आ सकेंगे और न अपने खेत-खलिहान में जा सकेंगे, न परिवार के लोगों से मिल सकेंगे। सबसे सदाकाल के लिए छुट्टी हो जायेगी।

लेकिन मोह टूटता कहां है! दूसरों को संसार से जाते हुए देखकर भी, मोह टूटता नहीं है, आसक्ति मिटती नहीं है। यही आसक्ति और मोह पीड़ा के कारण हैं।

लोगों को संसार से जाते हुए देखकर अनासक्ति बढ़ती, मोह टूटता तो फायदा होता। लेकिन मोह वैसे के वैसे है। कहानी के अनुसार सिद्धार्थ ने एक रोगी को देखा, एक बूढ़े को देखा और एक मृतक को देखा। तीनों को देखकर उनके मन में वैराग्य हो गया। उनके पास भोगविलास की पूरी वस्तुएं थीं, लेकिन रोगी, बूढ़ा, मृतक आदि को देखकर उन्हें सब तरफ से उदासीनता हो गयी। सोचा कि अंत में सबका वियोग हो जाना पक्का है, तो ये सारे भोग-विलास किस काम के हैं। धन-दौलत, ऐश्वर्य हमें रोग, बूढ़ापा और मृत्यु से बचा नहीं सकते तो फायदा क्या हुआ? उनके मन में मंथन हुआ और अट्ठाइस साल की जवानी में घर छोड़ दिये। तपस्या-साधना में लग गये। सिद्धार्थ तपस्या करके बुद्ध बन गये।

बुद्ध का अर्थ होता है जागा हुआ। जो जाग गया वह बुद्ध हो गया। बुद्ध का अर्थ ज्ञानी है। ज्ञानी होने का अर्थ है जाग जाना। 'जो जागल सो भागल हो रमैया राम।' कबीर साहेब कहते हैं कि हे रमैया राम! जो जागता है वह भाग जाता है। कहां से भागता है? वह भागता है मोह-माया से, दुराचरण से, आसक्ति से, मनोविकारों से।

मनोविकारों का त्याग कर देना, समस्त दुराचरणों का त्याग कर देना, ज्ञान के पथ में लग जाना, संयम-साधना के पथ में लग जाना—यही जागने की पहचान है। सिद्धार्थ ने रोगी, मृतक, बूढ़े को देखा और सिद्धार्थ से बुद्ध बन गये। यह सब हम भी देखते हैं लेकिन हमारी आंखें नहीं खुल पातीं। हमारी निद्रा-बेहोशी जबर्दस्त है। हम ठोकरें पर ठोकरें खाते हैं फिर भी जाग कहां पाते हैं!

एक युवक साधु हो गया। सुंदर शरीर के साथ मस्त जवानी थी। एक बाग में वह ध्यान में बैठा हुआ

था। उधर से वहां का राजा निकला। उस युवक साधु को देखकर राजा प्रभावित हो गया। उस साधु के पास गया, बैठा, बातचीत हुई। बातचीत करते-करते राजा ने कहा कि आप जवानी में साधु क्यों हो गये? यह उम्र तो संसार में आनंद लेने का है। पहले संसार का आनंद ले लेते तब फिर साधु होते। यदि तुम्हारे पास भोग-सुख के साधन नहीं हैं तो मैं तुम्हें सब कुछ देने के लिए तैयार हूं। चलो मेरे साथ राजमहल में रहो। तुम्हें जो भी सुख-सुविधाएं चाहिए वे सब मिल जायेंगे। राजा की बातों को सुनकर उस महात्मा ने कहा—ठीक है, मैं आपके साथ चल सकता हूं, लेकिन मेरी एक शर्त है यदि वह चीज मुझे मिल जाये तो मैं आपके साथ चल सकता हूं। युवक साधु ने कहा कि मुझे ऐसी जवानी दें जो कभी बुढ़ापा में न बदले, शरीर में ऐसी शक्ति दें कि चाहे मैं कितना भी विषयों को भोगूं लेकिन इन्द्रियां शिथिल न हों। शरीर में कभी रोग न आये और शरीर की मृत्यु न हो तो आपके साथ मैं जाने के लिए तैयार हूं। राजा ने कहा कि इनमें से एक पर भी मेरा अधिकार नहीं है। उस साधु ने कहा कि फिर मैं आपके साथ नहीं चल सकता।

चाहे कितनी लम्बी उम्र मिल जाये उससे कोई बड़ा फायदा होने वाला नहीं है। जीवन किसका लंबा है किसका छोटा है महत्त्व इसका नहीं है, महत्त्व है कि जीवन में क्या किया जा रहा है। जिंदगी छोटी है लेकिन उस जिंदगी में आत्मकल्याण और लोककल्याण का काम कर लिये तो जिंदगी सफल है। जिंदगी बहुत लम्बी है, सौ वर्ष से भी अधिक है लेकिन स्वयं उलझे रहे, दुखी रहे तथा औरों को भी दुखी करते रहे, तकलीफ देते रहे, लोगों को गलत मार्ग पर ले जाते रहे तो ऐसी जिंदगी बेकार ही तो है।

अनेक ऐसे संत हुए हैं जिनमें से बहुतों को छोटी जिंदगी मिली और बहुतों को लम्बी जिंदगी मिली। कबीर साहेब को एक सौ बीस वर्ष की उम्र मिली थी। लेकिन स्वामी शंकराचार्य का शरीर 32 वर्ष की उम्र में ही छूट गया। आज से बारह सौ साल पहले कोई साधन नहीं था परन्तु कितना काम किया! श्री पूरण साहेब का बत्तीस वर्ष की उम्र में ही शरीर छूटा। वे महान वैराग्यवान थे और कई पुस्तकें भी लिखी। वे अपना काम कर गये और अनमोल ग्रंथ रूपी धरोहर छोड़ गये। संत ज्ञानेश्वर जी महाराज का शरीर बाईस वर्ष में ही छूट गया। जाने के पहले वे गीता पर ज्ञानेश्वरी टीका लिख चुके थे। ऐसे अनेक लोग हुए हैं जो थोड़ी उम्र में ही बड़े-बड़े काम कर गये।

यह नहीं सोचना चाहिए कि हमें बड़ी लंबी जिंदगी मिले। जिंदगी जितनी है ठीक है वह हमारे हाथ में नहीं है। हमारे सोचने से जिंदगी बड़ी नहीं हो जायेगी और हमारे सोचने से जिंदगी छोटी नहीं हो जायेगी। जब तक प्रारब्ध कर्मों का वेग है तब तक जीवन चलता रहेगा। इतना हम ध्यान रखें कि हम संयम से, परहेज से रहें। खान-पान, बात-व्यवहार में असंयम न हो। क्योंकि अधिकतम रोग असंयम के परिणाम से ही होते हैं। हमारे द्वारा जानबूझकर ऐसा काम न हो जिससे दूसरों को तकलीफ मिले। जानबूझकर हम ऐसा काम न करें जिससे हमारा अहित हो, मानसिक रूप से हमें अशांति मिले, उलझन मिले, मन विकारी और चंचल हो।

संसार में नवीनता कहां है। सब कुछ तो वही है। नवीनता एक ही बात में हो सकती है कि आज तक हमने अपने आपको सर्वत्र उलझाने का काम किया है तो अब ऐसा काम करें कि हमारी उलझन सुलझ जाये। आज तक हमने अपने आपको पीड़ित और अशांत करने का काम किया तो अब ऐसा काम करें जिससे पीड़ा और अशांति मिटे और शांति-सुख, आनंद बढ़े। यह सब दुनिया के पदार्थों से, राग-रंग से और बहुत ज्ञान बघारने से नहीं मिलने वाला है। मन की निर्मलता, ज्ञान, भक्ति, विवेक, विचार—यही नवीनता है। बाकी सब प्राचीन है। सद्गुरु कबीर साहेब ने एक भजन में कहा है "औघट चले सो नगरी पहुँचे, बाट चले सो लूटे" जो औघट में चलता है वह नगरी में, अपने घर में जल्दी पहुंच जाता है। जो परिचित रास्ते पर चलता है, बनी-बनाई सड़क पर चलता है वह तो लूट जाता है, अपना सब कुछ गवां बैठता है।

इसका अर्थ क्या है? व्यावहारिक क्षेत्र में जिस रास्ते में अब तक हम चलते आये हैं, जो बना-बनाया रास्ता है, उस पर चलने से सुविधा मिलती है, हम जहां जाना चाहते हैं वहां पहुंचते हैं। और जो कुघाट है, ऊंची-नीची जगह है, दुर्गम, कठिन और अपरिचित रास्ता है उस पर चलते हैं तो समय लगता है, कठिनाई होती है। पहुंच भी नहीं पाते हैं। भय बना रहता है। लेकिन सद्गुरु कबीर साहेब कहते हैं कि दुर्गम और अपरिचित रास्ते पर चलोगे तो अपनी मंजिल तक जल्दी पहुंचोगे और यदि सीधे सरल रास्ते पर चलोगे तो लूट लिये जाओगे।

इसका अर्थ है कि जिस रास्ते में आज तक चलते आये हो उस रास्ते में लूट लिये जाओगे। वह कौन-सा रास्ता है? वह रास्ता है संसार का रास्ता। मोह-माया, राग-रंग, लड़ाई-झगड़ा, वैर-विरोध, तू-तू मैं-मैं का रास्ता। इसी रास्ते में आज तक हम चलते आये हैं। यही परिचित रास्ता है। साहेब कहते हैं यह सांसारिकता का तुम्हारा जो मार्ग है, इस पर चलते रहोगे तो तुम लूटे जाओगे। विवेक-विचार, तुम्हारी आत्मशांति, तुम्हारा आत्मसुख सब कुछ लूट जायेगा।

बाहर से आदमी भरा-पूरा, सम्पन्न दिखता है, शरीर भी सुन्दर दिखता है लेकिन भीतर से देखो तब आदमी का दिल रोता रहता है। एक अभाव की अनुभूति एवं असंतोष में आदमी बराबर जलता रहता है। कुछ खो गया है ऐसा उसको अनुभव होता रहता है। सांसारिकता का मार्ग ही ऐसा है। कितना ही इसमें मिल जाये किन्तु खालीपन का ही अनुभव होता है।

साधुता के मार्ग में जो धर्म का क्षेत्र है, यहां भी आ करके साधु, महात्मा, गुरु और महंत केवल शिष्य, शाखा, गद्दी-महन्ती, मान-बड़ाई, पूजा-प्रतिष्ठा इसी में अपने को धन्य मान लिये तो उनके अंदर भी वही अभाव की अनुभूति बनी रहती है। कितनी पूजा मिल जाये, कितनी प्रतिष्ठा मिल जाये, कितने शिष्य बन जायें और कितने मठ बन जायें तृप्ति कहां होती है? संतोष कहां होता है? बेचारे जलते रहते हैं।

सहज ढंग से कोई मठ बन गया, प्रचार हो गया, सही ढंग से लोग शिष्य बन गये तो वह अलग बात है, उसमें अपनी कोई चाहना न हो। लोग आते हैं सम्मान देते हैं तो उनकी मर्जी। इससे उनको लाभ मिलता है लेकिन हमारा उससे क्या लाभ है। हम सावधान न रहें तो हममें अहंकार जग सकता है कि देखो मैं इतना बड़ा साधु हूं, वैरागी हूं तभी तो लोग मुझे सम्मान देते हैं।

सम्मान देने वाले को तो लाभ हो सकता है, उसके मन में प्रसन्नता होगी, लेकिन हम यदि उसमें अहंकार कर लें कि मैं बड़ा हूं तभी लोग मुझे ऐसा मानते हैं तो फिर हमारा पतन है।

शिष्य-शाखा, पूजा-प्रतिष्ठा की जो लालसा है, उसके लिए जो रात-दिन दौड़ रहे हैं वे कहां सुखी हैं? वे भीतर से खाली-खाली महसूस कर रहे हैं।

चाहे दुनियादारी का क्षेत्र हो चाहे धर्म का क्षेत्र हो, बाहरी वैभव से किसी को पूर्ण सुख-शांति का अनुभव नहीं होता है। वह सच्ची सुख-शांति का रास्ता है भी नहीं।

कबीर साहेब कहते हैं—परिचित रास्ते पर चलोगे तो लूट लिये जाओगे, अशांति में पड़ जाओगे। और यदि अपरिचित रास्ते पर चलोगे तो नगरी तक पहुंच जाओगे। अपरिचित रास्ता है सहनशीलता का, ज्ञान, विवेक, वैराग्य, अनासक्ति और संयम-साधना का रास्ता, क्योंकि अभी तक उस पथ पर चले नहीं हैं। इसलिए वह कठिन लगता है।

लेकिन साहेब कहते हैं कि इसी कठिन रास्ते पर चलोगे तो अपनी नगरी तक, आत्मस्थिति तक, आत्म शांति तक पहुंच जाओगे। व्यावहारिक जीवन में जो परिचित लोग रहते हैं उनके साथ रहने में निर्भयता होती है, क्योंकि उनको हम जानते-परखते हैं। इसलिए ज्ञानी से ज्ञानी महात्मा भी व्यावहारिक क्षेत्र में परिचित लोगों के बीच ही जीवन गुजर करते हैं, अपरिचितों से बहुत सावधान रहना पड़ता है। लेकिन आध्यात्मिकता का क्षेत्र ऐसा है कि जो परिचित लोग हैं उनके मोह का, उनके संबंध का जब तक त्याग नहीं किया जायेगा और अपरिचितों से संबंध नहीं जोड़ा जायेगा तब तक कल्याण या आत्मशांति की प्राप्ति नहीं हो पायेगी।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष, ईर्ष्या, घृणा, वैर-विरोध ये सब परिचित हैं। अनादिकाल से इन सबसे परिचय है। जब तक हम इन परिचितों का साथ नहीं छोड़ेंगे तब तक आत्मशांति या कल्याण नहीं मिल सकता। इसके साथ-साथ जो अपरिचित हैं उनसे संबंध जोड़ना पड़ेगा, उनसे प्रेम करना पड़ेगा, उनको अपने पास बनाये रखना पड़ेगा।

संयम, सहनशीलता, विवेक, विचार, ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, अनासक्ति, साधना ये सब अपरिचित हैं। इनसे जितनी हमारी प्रगाढ़ता होगी, जितना इनसे हमारा संबंध मजबूत होगा उतना हम आत्मकल्याण की तरफ जल्दी बढ़ेंगे। यद्यपि विश्वास नहीं होता। कबीर साहेब ने बीजक में कहा है—'संतो कहौं तो को पतियाई, झूठ कहत साँच बनि आई।' हे सन्तो! मैं कहता हूं तो इस पर विश्वास कौन करेगा? कहने में तो बात झूठ-जैसे लगती है लेकिन उस पर विचार करो तो बात सही ठहरती है।

महात्मा लोग कहते हैं कि गम खाओ, सहनशील बन जाओ, सहन करो, संतोष करो सब ठीक हो जायेगा तो लोग कहते हैं कि अरे, सहनशील बन जायेंगे तो लोग हमें दबोच लेंगे। इससे कैसे काम चलेगा। यह सहनशीलता और शांति का रास्ता ठीक नहीं है। जैसे के साथ तैसा व्यवहार करने में ही शांति है और तब दुनिया में चैन से जीया जा सकता है।

जिन लोगों के बीच हम रहते हैं वहां सहन करके देखा जाये। यदि वहां सहन कर लिये तो घर का सारा कलह मिट जायेगा। यदि वहां सहन नहीं करोगे तो किस-किस से लड़ोगे? सहन कर ले, अपने मन को मार ले तो दूसरा कब तक लड़ेगा? अंत में उसे भी चुप होना पड़ेगा और शांति आ जायेगी। लेकिन इस पर लोगों को विश्वास नहीं होता है।

महात्मा लोग कहते हैं कि मन को निर्मल बनाओ, जो सुख तुम चाहते हो वह अपने आप मिल जायेगा। लेकिन इस पर विश्वास नहीं होता है क्योंकि वैसा काम नहीं करते। काम करे, मन को निर्मल बनाने का प्रयास करे तो पता चल जायेगा।

बहुत सारी बातें हमें झूठ लगती हैं, इसमें कारण है अपनी कमजोरी। इसी कारण उन पर विश्वास नहीं होता है। यदि हम अपने जीवन में प्रयोग करेंगे तब बात समझ में आयेगी कि यह बिलकुल सही है। अब तक जो हमारे परिचित रहे हैं वे कौन हैं? मनोविकार। उनसे संबंध को तोड़ना पड़ेगा। और जो अपरिचित रहे हैं, सद्गुण-सदाचार उनसे संबंध जोड़ना पड़ेगा तब शांति मिलेगी। यही आत्मशांति का रास्ता है।

'औघट चले सो नगरी पहुंचे, बाट चले तो लूटे' जो औघट में चलेगा, अपरिचित रास्ते पर चलेगा वह मंजिल तक पहुंचेगा। अपरिचित रास्ता है त्याग का पथ, संतोष का पथ। परिचित रास्ता है सांसारिकता का, राग-रंग का पथ। इसमें लूट जाना होगा। इसको ही कठोपनिषद् में श्रेय मार्ग और प्रेय मार्ग कहा गया है। भोग का रास्ता प्रेय मार्ग है। इसी रास्ते में चलते हुए आये हैं, इसीलिए यह सुखद जान पड़ता है। शुरू में सुखद, आनंददायक, सरल जान पड़ता है लेकिन इसका परिणाम होता है दुख, असंतोष और अशांति।

श्रेय मार्ग त्याग का मार्ग है। यह अपरिचित है। शुरू में दुखद और कठिन जान पड़ता है लेकिन इसका परिणाम बहुत सुखद है, शांति है, निर्मलता है, कल्याण है। कल्याण का मतलब है पूर्ण आत्मसंतोष का अनुभव। इसी पथ पर चलकर ही आदमी जो चाहता है उसे पा सकता है और कोई रास्ता है नहीं।

लम्बी उम्र की इच्छा लोगों के मन में होती है। हम लम्बे दिनों तक जीवित रहें, लेकिन लम्बे दिनों तक जीवित रहकर क्या करना है? किसलिए जीना है? जीने का उद्देश्य क्या है? कोई उद्देश्य तो होना चाहिए। केवल कमाये-खाये, उलझे, रीझे, खीझे यह कोई उद्देश्य तो नहीं है। इससे अच्छा तो पशु का जीवन होता है। अपना पेट भर लिये और निश्चिंत पड़े हैं। न राग न द्वेष, न लड़ाई न झगड़ा, न किसी प्रकार का कोई टेंशन। कई अर्थों में देखा जाये तो आदमी से पशु बहुत ज्यादा सुखी हैं। यद्यपि उनका मानसिक विकास नहीं हो सकता, वे

आगे नहीं बढ़ सकते, उनमें क्षमता नहीं है। लेकिन उनके पास कोई तनाव नहीं है, मानसिक उलझन नहीं है, राग-द्वेष की गांठ उनमें नहीं है। वे निश्चिंत और निर्भय हैं।

आदमी के पास सब कुछ है परन्तु कितना चिंतित है और कितना तनावग्रस्त है, उलझा हुआ है। राग-द्वेष की गांठ मन में पड़ी हुई है। लड़ाई-झगड़ा करके समय-शक्ति को बर्बाद कर रहा है। लेकिन यदि आदमी सम्हल जाये तो एकदम ऊपर उठ सकता है, पूर्ण आत्मशांति का अनुभव कर सकता है। बस, ध्यान देने की बात है। ध्यान नहीं देता है इसलिए दुखी बना रहता है। ध्यान दे और वैसा काम करने लग जाये तो परमानंद और परम सुख का अनुभव कर सकता है।

आदमी के अलावा परमानंद और परमसुख का अनुभव कौन कर सकता है? आदमी ही कर सकता है लेकिन समझ ही नहीं बन पाती है। समझ है बाहर की। बाहर की वस्तुओं को पकड़कर रखना चाहते हैं। वस्तुओं को अपने वश में रखने, उन्हें एकरस बनाये रखने की चाहना यही तो दुख का कारण है। हम समझ नहीं पाते हैं कि वस्तुओं का स्वभाव है परिवर्तनशीलता। यह तो बदलेगी ही। जितना हम अधिकार में रखना चाहेंगे उतनी चिंता बढ़ेगी, भय बढ़ेगा, पीड़ा बढ़ेगी। अधिकार की लालसा छोड़ दें, जब जैसा मिला है उसका उपयोग करते चलें, मेहनत करते चलें और निश्चिंत रहें। जो होना होगा वह होगा। हमारे चाहने या न चाहने से सब कुछ वैसे थोड़े हो जायेगा।

प्रकृति का एक नियम है जो भवितव्य है वह तो होकर ही रहेगा। होनी को हम स्वीकार करते चलें, बस कोई तनाव नहीं रहेगा, भय नहीं रहेगा। संसार में केवल घटनाएं घटती हैं उनमें हानि-लाभ, अनुकूलता और प्रतिकूलता कुछ नहीं है। ये सब हमारे मन की मान्यता है। प्रकृति में घटनाएं घटती हैं उनमें एक ने हानि मान ली और एक ने लाभ मान लिया।

आदमी की मृत्यु होती है तो उसके परिवार वाले दुखी हो गये, रोने लग गये। लेकिन मरे हुए आदमी को जो शत्रु मानता था वह खुश हो गया कि चलो, मेरा शत्रु खत्म हो गया। आदमी का मरना एक घटना है लेकिन मित्र और परिजन जो उससे जुड़े हुए हैं वे दुखी हुए। उनसे जो उदासीन थे वे न सुखी न दुखी। ऐसे ही सब जगह की बात है। संसार में केवल घटनाएं घटती हैं। घटनाएं अच्छी-बुरी नहीं होती हैं। उनमें अच्छे और बुरे का आरोपण हम करते हैं अपने मन की मान्यता के अनुसार। जैसा हम चाहते थे वैसी घटना नहीं घटी तो दुखी और जैसा हम चाहते थे वैसी घटना घट गयी तो सुखी। यद्यपि हमारे चाहने और न चाहने से घटना पर कोई फर्क नहीं पड़ता है।

जो घटनाएं स्वाभाविक रूप से घटती हैं उन्हें उसी रूप में स्वीकार करें। अपनी ओर से कोई ऐसा काम न करें जिससे दूसरों का नुकसान हो। हमारे पास एक घड़ी है, कोई आदमी आकर इस घड़ी को पटक दिया तो वहां इच्छा काम कर रही है। उस समय उस आदमी को रोक सकते थे। लेकिन घड़ी के ऊपर कोई वजनी चीज गिर गयी और घड़ी टूट गयी तो उसे हम क्या कर सकते हैं। हमारे पास मकान है, उसे अपनी ओर से नुकसान न पहुंचायें। लेकिन मकान में अचानक आग लग गयी या बाढ़ आ गयी तो नुकसान हो गया तो यह हमारे हाथ में नहीं है।

अंत में हमें यह स्वीकार करना होगा कि वस्तुओं को तो बिगड़ना ही है। जो हमारे हाथ में नहीं है उसको लेकर हाय-तोबा करने से क्या फायदा? आगे क्या करना है, इस पर सोचें और काम करें। बीती घटनाओं को लेकर चिंतित रहना अपना बनाया दुख है। आदमी को ज्यादा दुख बीती घटनाओं को लेकर ही होता है। जितना आदमी के मन में तनाव है वह सब बीती घटनाओं को लेकर है।

उन्होंने मुझे ऐसा कहा था, उन्होंने मुझे ऐसे धोखा दिया था, उन्होंने मेरी बात नहीं मानी थी इन्हीं सब बातों को लेकर आदमी टेंशन बना लेता है और दुखी होता रहता है। जबकि सारी बातें मुरदा हो गयीं और अब मुरदा को ढोने से क्या फायदा? मुरदा को ढोयेंगे, तो उससे केवल दुर्गंध आयेगी। इसलिए मुरदा को कोई आदमी अपने पास रखता नहीं है। जैसे ही जीव निकला शरीर मुरदा हुआ कि आदमी उसको गाड़ देता है या

जला देता है। कोई आदमी मुरदा को लेकर चल रहा हो कई दिनों तक तो उसे लोग पागल ही तो कहेंगे।

वैसे हम लोग भी पागल हैं। मुरदा को ढो रहे हैं। पुरानी बातों को लेकर याद कर रहे हैं, उन्होंने ऐसा कहा था, उन्होंने ऐसा बरताव किया था। जब किया था तब किया था, बाद में वह पश्चाताप किया होगा। लेकिन उसके आधार पर हम आज भी उसको शत्रु माने बैठे हैं। किसी ने हमारा बड़ा सम्मान कर दिया था। उन्होंने उस समय सम्मान किया अब उसका मन बदल गया है लेकिन उसी को लेकर हम मानते हैं कि वह हमारा बहुत बड़ा भक्त है, सेवापरायण है।

जो घटनाएं घट गयीं वे लौट करके आने वाली नहीं हैं, अब उनको लेकर जलते रहना ठीक नहीं है। जो घटनाएं घटी हैं उनसे शिक्षा ले लें, बस। ऐसा काम किया था तो लोगों को लाभ हुआ था और अच्छा भी लगा था। इसलिए हमें ऐसे काम करना चाहिए। ऐसी बात कहनी चाहिए। भूत की याद केवल प्रेरणा लेने के लिए की जा सकती है। लेकिन प्रेरणा कितने लोग लेते हैं और कहां लेते हैं? उसको ढो रहे हैं और मन में टेंशन बनाये हुए हैं। यह तो अपना बनाया दुख है। जो होनी है उसे स्वीकार करना होगा। उसे हम टाल नहीं सकते। वर्तमान में हमें यह निश्चय करना है कि अब और आगे के लिए क्या करना है। जो वर्तमान को सुधारता है, आज ठीक से काम कर रहा है उसका भविष्य सुधरता जायेगा और वह धीरे-धीरे अपने दुख को कम करके एक दिन पूरा दुखमुक्त हो जायेगा।

जो यह सुंदर अवसर मिला हुआ है इसका सदुपयोग करें, बीती बातों से केवल प्रेरणा लें। उसे मुरदे के समान ढोते न रहें और वर्तमान को सुधारें। वर्तमान हमारे हाथ में है और इसी में हम कुछ कर सकते हैं। भूत मुरदा है और भविष्य सपना है। परम पूज्य गुरुदेव जी ने अपनी एक कविता के अंत में कहा है—

जो बीत गया मुरदा है, आने वाला सपना है।
जिसमें हम बंधन काटें, वर्तमान समय अपना है॥

परम सुख शांति की बहार

रचयिता—जितेन्द्र दास

नख सिख तजे विकार,
हो जायेगा भवसिन्धु पार॥ टेक॥

किसके लिये आया है,
कौन तुझे बुलाया है।
जरूरत क्या है जग में,
कर लो सोच विचार॥ 1॥

धन प्रभुताई में अटके हैं,
राग-द्वेष के झटके हैं।
ऊंच नीच मतभेद क्यों,
कर सबसे प्रेम व्यवहार॥ 2॥

भूखे प्यासे नंगों को,
दो भोजन पानी कपड़े को।
सन्तन की कर सेवा भक्ति,
दिल से इसे स्वीकार॥ 3॥

तजो बुरी आदत लाचारी,
छोड़ो कपट चुगली चारी।
निष्काम वृत्ति धारण कर,
करो इस धन का व्यापार॥ 4॥

खुद से है अनजान,
भरम भुला है जहान।
'जितेन्द्र' निजस्थिति में ही
परम सुख शांति की बहार॥ 5॥

वर्तमान ही अपने हाथ में है उसका सुधार करें, सदुपयोग करें और अपना काम करें।

लम्बी जिंदगी की आशा छोड़कर जो जीवन मिला हुआ है उसमें ऐसा काम करते चलें जिससे हमारा मन सुलझा हुआ हो, मन में शांति हो और दूसरों को भी शांति-सुख और प्रसन्नता मिले।

—धर्मेन्द्र दास

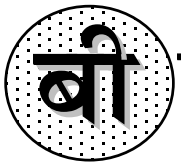

बीजक चिंतन

विषयों को छोड़कर अपने स्वामित्व में प्रतिष्ठित होओ

शब्द–107

खसम बिनु तेली को बैल भयो॥ 1॥
बैठत नाहिं साधु की संगत, नाथे जन्म गयो॥
बहि बहि मरहु पचहु निज स्वारथ, यम को दण्ड सह्यो॥
धन दारा सुत राज काज हित, माथे भार गह्यो॥
खसमहि छाँड़ि विषय रंग राते, पाप के बीज बोयो॥
झूठी मुक्ति नर आश जीवन की, उन्ह प्रेत को जूँठ खयो॥
लख चौरासी जीव जन्तु में, सायर जात बह्यो॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, उन श्वान को पूँछ गह्यो॥

शब्दार्थ—खसम= स्वामी, पति, निजस्वरूप चेतन। नाथे= जुते हुए। पचहु= पचना, जी–तोड़ मेहनत करना, परेशान होना। यम= मलिन वासना, बुरे संस्कार, अशुद्ध मन। खसमहि= निजात्म देव को। राते= आसक्त हुए। प्रेत को जूठ= अनेकों द्वारा अनेक बार भोगी हुई यह जड़–प्रकृति। सायर= समुद्र।

भावार्थ—इस देह में रहने वाले मन, बुद्धि, इंद्रियादि के स्वामी निजात्मदेव के परिचय बिना आदमी तेली के बैल के समान हो गया है जो कोल्हू में जुता हुआ निरंतर चलता है और इसी में उसका जीवन जाता है। संसारी आदमी की दशा भी यही है। वह कभी साधु–संगत में नहीं बैठता ॥ 1–2॥ वह अपने देहेन्द्रिय–भोगों के मिथ्या स्वार्थ में पड़ा हुआ चरित्रभ्रष्ट होकर निस्तेज होता है और इन सबके लिए जी तोड़ परिश्रम करता एवं परेशान होता है और इन सबके फल में वह मलिन वासनाओं एवं दुष्ट संस्कारों द्वारा निरंतर प्रताड़ित होता है ॥ 3॥ इसने धन, स्त्री, पुत्र तथा राजकाज के लिए अपने सिर पर दुनियाभर का बोझ उठा रखा है ॥ 4॥ यह अपने आत्मदेव की बोधस्थिति छोड़कर विषयों के रंग में ही डूब गया और उनके लिए कर्तव्य–अकर्तव्य सब कुछ करके इसने अपने हृदय–क्षेत्र में पाप के बीज बो लिये ॥ 5॥ निज चेतनस्वरूप की स्थिति छोड़कर जहां तक मनुष्यों को बाहर मुक्ति की आशा दी जाती है वह सब झूठी है। इस झूठी मुक्ति की आशा में पड़कर मनुष्य मुरदे का जूठा खाता है। यह सारी जड़ प्रकृति अनेकों की भोगी हुई होने से मानो मुरदे का जूठा है ॥ 6॥ चौरासी लाख योनिरूपी समुद्र में सब जीव बहे जा रहे हैं ॥ 7॥ सद्गुरु कबीर कहते हैं कि खेद है कि ये मूढ़ मनुष्य कुत्ते की पूंछ पकड़कर इस विशाल संसार–सागर से तरना चाहते हैं; अर्थात मन की कल्पनाओं का सहारा लेकर उबरना चाहते हैं ॥ 8॥

व्याख्या—मनुष्य माया में लिप्त होकर किस तरह संसार में पिस–पिस कर जीवन बिताता है और इन सबका उसे क्या फल होता है इन सब विषयों पर इस शब्द में बड़ा सुन्दर विवेचन हुआ है। शब्द की पहली पंक्ति है ''खसम बिनु तेली को बैल भयो'' खसम अरबी भाषा का शब्द है। इसके अर्थ शत्रु तथा स्वामी दोनों होते हैं। यहां स्वामी अर्थ है। 'तेली का बैल' मुहावरा है जिसका अर्थ होता है रात–दिन पिसने वाला व्यक्ति। यह मुहावरा क्यों बना, इसका उत्तर सरल है। तेली अपने तेल पेरने के कोल्हू में बैल को जोत देता है, उसकी आंखों पर पट्टी बांध देता है और उसे एक बार हांक देता है, फिर वह उस कोल्हू में अपने आप चलता रहता है। तेली के बैल के लिए कोई रात या दिन का नियम नहीं रहता। वह घर के भीतर ही कोल्हू में जुता निरन्तर चलता रहता है। संसारी मनुष्य की दशा यही है। उसे यह पता नहीं है कि मेरी आत्मा ही सभी ज्ञान–विज्ञान का पति है। वह अपने स्वामित्व को छोड़कर इंद्रियों का गुलाम बना हुआ संसार में नथा चलता रहता है। वह एक बार संसार में जुत जाता है और जीवनभर सांसारिकता में पिसता रहता है। तेली के बैल की तरह उसे कभी फुरसत नहीं मिलती। तेली के बैल को तो चाहे फुरसत मिल भी जाये, परन्तु सांसारिकता में डूबे मनुष्य को फुरसत नहीं मिलती। संस्कृत भाषा के अनुसार ख+सम—ख= आकाश तथा सम= समान अर्थ होता है। खसम अर्थात आकाश के समान। आकाश के समान सब तरह के भावों से रहित। साहेब कहते हैं कि

आकाश के समान निर्मलता के बिना तुम तेली के बैल बन गये हो। जिसका मन आकाश के समान निर्मल है वह सांसारिक घनचक्कर में क्यों पड़ेगा !

"बैठत नाहिं साधु की संगत, नाधे जन्म गयो।" जैसे तेली का बैल कोल्हू में नधा हुआ जीवन बिताता है, वैसे मनुष्य सांसारिक धन्धे में जुता हुआ समय बिताता है। उसे फुरसत नहीं कि कभी साधु-सन्तों की संगत में बैठ जाये और उनके शीतल वचनों से अपने आप को शीतल कर ले। मनुष्य की बुद्धि जड़ हो जाने से वह सांसारिक स्वार्थ को तो लाभ समझता है, इसलिए उसके लिए वह रात-दिन धन्धे में नधा रहता है, परन्तु यह नहीं समझता कि मन की शांति परम लाभ है। इसे न समझने से ही वह साधु-संगत के लिए समय नहीं निकालता। समय तो सबके लिए समान है। राजा हो या चपरासी दिन-रात में सबके लिए चौबीस घंटे ही होते हैं। जो लोग कहते हैं कि क्या करें हमें समय नहीं मिलता, इसलिए सत्संग में नहीं जा पाते, वे गलत कहते हैं। यह बात ठीक है कि ऐसी विवशता कभी-कभी हो सकती है, परन्तु यदि वह बराबर यही मानता है कि क्या करें समय नहीं मिलता, तो वह धोखे में है। हम अपने समय को कहां लगाना चाहते हैं, यह हमारे विचारों तथा हानि-लाभ निश्चय पर निर्भर करता है। यदि हमें मानसिक शांति का लाभ निश्चय हो जायेगा, तो निश्चित ही सत्संग के लिए समय निकालेंगे।

"बहि बहि मरहु पचहु निज स्वारथ, यम को दण्ड सह्यो।" रात-दिन काम-धन्धे में ही लगे रहना बह-बहकर मरना है। अथवा सांसारिकता में इतना डूब जाना कि अपने नैतिक-नियमों एवं मर्यादा में न रह पाना, पदे-पदे पथभ्रष्ट होना बह-बहकर मरना है। जीवन में संयम और चरित्र सब कुछ है। जो विषयों में अधिक डूब जाता है उसका यह सब खो जाता है। यही उसका बह-बहकर मरना है। "पचहु निज स्वारथ" अपनी इंद्रियों के भोगों के स्वार्थ में डूबकर रात-दिन जी तोड़ मेहनत करना तथा परेशान होना पचना है। किसी दिशा में अटूट परिश्रम करना उस दिशा में उन्नति का साधन है, किन्तु विषयों की तृष्णा में पड़कर रात-दिन दुनियादारी में नधे रहना आत्मशांति के लिए ठीक नहीं है। भौतिक उन्नति के लिए श्रम करना चाहिए यह ठीक है, परन्तु आत्मशांति के लिए भी दूसरी दिशा में समय निकालना चाहिए। आदमी केवल भौतिक पदार्थों का बंडल नहीं है। उसकी इस भौतिक देह के भीतर चेतन आत्मा भी है जो उसका सार स्वरूप है। शरीर के लिए भौतिक पदार्थ चाहिए, किन्तु आत्मा के लिए शांति चाहिए। आत्मज्ञान तथा आत्मशांति की अवहेलना कर केवल भोगों और दुनियादारी में डूबा आदमी अनेक मलिन वासनाओं एवं कुसंस्कारों से आबद्ध हो जाता है। ये मलिन वासनाएं एवं कुसंस्कार ही यम बन जाते हैं जिनका दण्ड जीव को रात-दिन सहना पड़ता है। मनुष्य के मन के भीतर जो काम, क्रोध, लोभ, तृष्णा, मोह, भय, चिंता, विकलता आदि उसे नोचते रहते हैं यही तो यम का दंड है जो हर संसारी जीव रात-दिन सह रहा है।

"धन दारा सुत राज काज हित, माथे भार गह्यो।" इस दुनिया में आकर आदमी धन-परिवार तथा संसार में इतना भूल जाता है कि उसे यह होशहवास ही नहीं रहता कि मैं कौन हूं तथा जीवन का लक्ष्य क्या है ! आदमी अपने स्वरूप को भूलकर धन, घर, स्त्री, पुत्र, बंधु-बांधव ही सब कुछ मान लेता है। यह ठीक है कि मनुष्य का इन सबके लिए अपना उत्तरदायित्व होता है। उसे पहले तो अपने माने हुए शरीर के लिए ही कुछ करना पड़ता है। इसके बाद उसको स्वजन माने गये लोगों के लिए करना पड़ता है। घर, धन तथा सांसारिक पसारा को भी देखना पड़ता है, क्योंकि उन्हीं में उसका तथा उसके आश्रयीजनों का निर्वाह होना है। परंतु उसे यह भी विचारना चाहिए कि क्या मेरे इतने ही कर्तव्य हैं। उसे यह समझना होगा कि उसका सबसे बड़ा कर्तव्य होगा अपनी आत्मा का उद्धार करना। इस संसार में जीव का कुछ भी अपना नहीं है। उसने जिस धन-परिवार में उलझकर अपने उद्धार का काम दरकिनार कर रखा है वह उसके बंधनों के कारण बनते हैं, कल्याण के नहीं। संसार के धन-परिवार के प्रति हमारे मन के लोभ-मोह ही हमारे लिए फांसी बनते हैं। यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि जीव अकेला आया है

और अकेला ही जायेगा। इसलिए यहां मिले हुए सारे प्राणी-पदार्थों के भुलावे को छोड़कर आत्म-उद्धार के विषय में सचेष्ट रहना चाहिए।

"खसमहि छाँड़ि विषय रंग राते, पाप के बीज बोयो।" देह, इंद्रिय, मन, बुद्धि तथा सारे ज्ञान-विज्ञान का पति एवं स्वामी जीव ही है। जीव को चाहिए कि वह अपने स्वामीपने को समझे। वह यह समझे कि मैं मन-इंद्रियों का दास नहीं हूं, किन्तु इनका स्वामी हूं। मुझे चाहिए कि मैं मन और इंद्रियों को जीतकर रहूं। परन्तु जीव को अपने स्वरूप की पहचान नहीं है। वह अपने स्वामीपने को नहीं जानता। इसलिए वह अपने स्वामीपने को छोड़कर इंद्रियों के विषयों के रंग में लीन हो जाता है। "खसमहि छाँड़ि विषय रंग राते" का यही अभिप्राय है। यहां रंग का अर्थ है भावना और राते का अर्थ है आसक्त होना। जीव अपनी सर्वोच्च गरिमा को न समझकर विषयों की भावनाओं में ही सदैव डूबा रहता है। साधक भी जितने क्षण विषयों की भावना में रहता है उतने क्षण अपने स्वरूपज्ञान की प्रतिष्ठा से अलग हो जाता है, फिर संसारी जीव की क्या बात, जो हर क्षण विषयों की भावना ही में आकंठ डूबे हैं। जो व्यक्ति जितना अधिक विषयों में डूबेगा वह उतना अधिक पाप के बीज बोयेगा। विषय-वासना स्वयं में ही महापाप है। जिस भावना के आने पर व्यक्ति अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित न रह जाये और विचलित होकर मलिन-मन तथा मलिन-क्रिया वाला हो जाये, वही तो सबसे बड़ा पाप है। मन की मलिनता एवं मन की चंचलता गुरुतर पाप है। यह मन जितना अधिक विषयलीन होता है उतना अधिक पर-अपकार, पर-हिंसा आदि का पाप करता है। संसार के सारे कुकर्मों एवं पापों के मूल में है विषयासक्ति। अतएव सद्गुरु बड़े मनोवैज्ञानिकतापूर्वक कहते हैं कि जीव अपने स्वामित्व से वंचित होकर विषयों में डूबता है और यही मानो वह पाप के बीज बोता है।

"झूठी मुक्ति नर आश जीवन की, उन्ह प्रेत को जूँठ खयो।" पापी-पुण्यात्मा, रागी-विरागी सबके मन में मुक्ति का महत्त्व है। इस प्रकार मुक्ति का महत्त्व देखकर लोगों ने अपनी धारणा के अनुसार गलत-सही सारी इच्छित वस्तुओं एवं उद्देश्यों की प्राप्ति को ही मुक्ति बतलाना शुरू कर दिया। कुछ लोगों ने काया-कल्प कर तथा औषध सेवनकर शरीर को अमर बनाने की दुराशा ही मुक्ति मान ली। कुछ लोगों ने काम-भोग को मुक्ति मान लिया। वैयाकरणों ने शब्द-शोधन को तथा संगीतज्ञों ने जीवनभर संगीत में डूबे रहने को मुक्ति मान लिया। कुछ लोगों ने किसी कल्पित लोकविशेष, सातवें स्वर्ग एवं सातवें आसमान पर पहुंचने की दुराशा को मुक्ति मान लिया। कुछ लोगों ने यह कल्पना की कि भगवान है। उसका एक लोक है। उसके लोक में बसना सालोक्य, उसके पास बसना सामीप्य, उसके आकार का हो जाना सारूप्य तथा उसमें लीन हो जाना सायुज्य मुक्ति है। कुछ लोगों ने माना कि मैं बूंद हूं और समुद्र मुझसे अलग है; अतः उसमें मिल जाना मुक्ति है। इस प्रकार अपनी आत्मा से अलग विषयों एवं अवधारणाओं में स्थिति ही को मनुष्य ने मुक्ति मान लिया। साहेब कहते हैं कि यह मुक्ति झूठी है। जहां तक तुम अपने चेतनस्वरूप से अलग विश्राम एवं मुक्ति मानते हो, वह सब झूठा है; क्योंकि संसार के विषय तथा मन की धारणा तुम्हारा स्वरूप नहीं बन सकते। निज चेतनस्वरूप के अलावा सब कुछ नाशवान, छूटने वाला तथा विजाति है; अतएव वह सब हमारी स्थिति, विश्राम एवं स्थायी ठहराव का आश्रय नहीं बन सकता। इसलिए सद्गुरु कहते हैं कि तुम आत्मस्थिति के अलावा जहां तक मुक्ति की व्याख्या एवं मान्यता करते हो, सब झूठा है। निजस्वरूप की स्थिति छोड़कर मुक्ति की आशा झूठी है। अपनी चेतना एवं आत्मा के अलावा चाहे वह स्थूल विषय हो या मन की अवधारणा, सब जड़ विजाति प्रकृति है, और यह प्रकृति असंख्य पुरुषों द्वारा असंख्य बार भोगी गयी होने से जूठी है। "प्रेत को जूँठ" का अर्थ है मरे हुओं का जूठा। असंख्य लोग जिसे भोग-भोगकर मर चुके हैं, वह जड़ प्रकृति प्रेत का जूठा है। झूठी मुक्ति की आशा वाले उस जूठी जड़-प्रकृति में किसी-न-किसी प्रकार रमना ही मुक्ति मानते हैं जिसे असंख्यों ने भोगा है। अतएव सद्गुरु जूठी जड़ प्रकृति से वैराग्य कराकर

साधक को संकेत देते हैं कि वह जड़ प्रकृति से लौटकर अपने स्वरूप में स्थित हो। मेरी अपनी आत्मस्थिति किसी अन्य की जूठी नहीं हो सकती। क्योंकि आत्मस्थिति का उपभोक्ता स्वतः आत्मा ही है, दूसरा नहीं। इसलिए आत्मस्थिति एवं स्वरूपस्थिति ही विवेकियों का प्राप्तव्य है। स्वरूपस्थिति ही मोक्ष है।

"लख चौरासी जीव जन्तु में, सायर जात बह्यो।" भारतीय लोकधारणा के अनुसार संसार में सब चौरासी लाख योनियां हैं। चौरासी लाख से कम हों या अधिक हों, यहां 'चौरासी लाख' का लाक्षणिक अर्थ समझना चाहिए संसार की सारी योनियां। ये संसार की असंख्य योनियों का समुच्चय मानो विशाल समुद्र है जिसमें सब जीव निरंतर बहे जा रहे हैं। कबीर साहेब कहते हैं कि हे सन्तो ! इस विशाल संसार-सागर से तरने के लिए लोगों ने कुत्ते की पूंछ पकड़ी है। श्वान की पूंछ पकड़कर नदी पार करना भी कठिन है, फिर उससे समुद्र कैसे पार किया जा सकता है? श्वान की पूंछ एक मुहावरा है जिसमें दुराशा की व्यंजना है। श्वान की पूंछ न कभी सीधी होती है तथा न उसे पकड़कर समुद्र पार किया जा सकता है। इसी प्रकार मन के कुटेवों, विषय-वासनाओं तथा दुर्गुणों को रखकर न कोई सुखी हो सकता है तथा न मन की अवधारणाओं के सहारे कोई संसार-सागर से मुक्त हो सकता है। इसके लिए तो मन की सारी वासनाओं को त्यागकर, मन को भी अपने से अलग समझकर उसका द्रष्टा हो जाना चाहिए तथा मन को छोड़कर अपने आप में स्थित हो जाना चाहिए।

सद्गुरु ने इस शब्द में इस बात पर जोर दिया है कि जीव अपने स्वामित्व को भूलकर विषयों में तथा संसार के प्रपंचों में बह रहा है। इस बात पर लक्ष्य रखकर उन्होंने विषयों तथा सांसारिकता से हटने की ओर तीव्र व्यंजना की है, और दो बार खसम शब्द कहकर साधक को याद दिलाया है कि तुम अपने स्वामीपने को समझो। मन-इन्द्रियों की गुलामी तथा नाना कल्पित अवधारणाओं को छोड़कर अपने आत्मदेव-चेतनदेव में स्थित होओ।

होनी

लेखक—श्री भावसिंह हिरवानी

हमारा जीवन विसंगतियों और अनिश्चितताओं से भरा हुआ है। यहां कब क्या हो जायेगा, कोई नहीं जानता। ऐसी-ऐसी घटनाएं घटती हैं कि आदमी बस देखता रह जाता है। कल तक जो चुस्त-दुरुस्त इठलाता घूमता था, आज उसकी मौत की खबर से सब हक्के-बक्के रह जाते हैं। इस तरह की अनेक घटनाएं देखी-सुनी गई हैं कि लोग खुशियों में झूम रहे थे, किन्तु दूसरे ही पल अचानक दुखद घटना का समाचार मिला और सारी खुशियां मातम में बदल गयीं। इसके विपरीत कई बार ऐसा भी संयोग होता है कि चारों ओर से हताश-निराश हो गये व्यक्ति को अनायास कहीं से सहारा मिल जाता है और उसकी जिंदगी खुशियों से भर जाती है। यहां अमीर को गरीब और गरीब को अमीर बनते देर नहीं लगती। इसलिए कहा जाता है कि आदमी को हिम्मत नहीं हारना चाहिए। क्योंकि यहां किसी भी क्षण कुछ भी हो सकता है। इसी को हम होनी या भाग्य का लिखा कहते हैं।

इतिहास गवाह है, अतीत में ऐसी अनेक अप्रत्याशित घटनाएं घटित हुई हैं, जिसकी कल्पना किसी ने नहीं की थी। वर्षों की गुलामी के बाद जब भारतवासी आजादी की खुशी में झूम रहे थे, तभी अचानक देश पर विभाजन का गाज गिरा और भारत से

अलग हुआ हिस्सा पाकिस्तान बन गया। परिणामस्वरूप जगह बदलने की अफरा-तफरी में हिन्दू और मुसलमान दोनों समुदायों के बीच भयंकर रक्तपात हुआ जिसमें हजारों की संख्या में लोग मारे गये। महात्मा गांधी सहित कई नेता इस विभाजन के खिलाफ थे, मगर कुछ नेताओं की महत्त्वाकांक्षा के कारण देश विभक्त हो गया और महात्मा गांधी भी इसे रोक नहीं पाये। कालांतर में पाकिस्तान भी दो टुकड़ों में बंट गया और बांग्लादेश अस्तित्व में आ गया। इस तरह देखा जाता है कि होनी के आगे किसी की नहीं चलती।

भारतीय समाज में रामायण और महाभारत दोनों ग्रंथों का व्यापक प्रभाव है। इन कथाओं में हमने देखा है, संपन्न और समर्थ इंसान भी नियति के हाथों का खिलौना बनकर रह गया। किन्तु यह भी तथ्य है कि इस नियति का सृजन कहीं न कहीं, मनुष्य ने स्वयं अपने कर्मों से किया है। युवराज युधिष्ठिर जब अपना सारा राज-पाट जुआ में हार गये, तब महाराज धृतराष्ट्र ने उन्हें सब कुछ लौटा दिया। मगर युधिष्ठिर फिर जुआ खेलने बैठ गये और इस बार राज-पाट सहित अपने भाइयों और द्रौपदी को भी दावं पर लगा दिया जो कालांतर में महाभारत युद्ध का कारण बना।

महाभारत में कौरव-पांडवों के अलावा श्री कृष्ण की भूमिका बेहद अहं है। महाभारत युद्ध की समाप्ति के पश्चात जब श्री कृष्ण गांधारी से विदा लेने गये तो दुखी गांधारी बोली "कृष्ण, तुम चाहते तो इस युद्ध को रोक सकते थे, लेकिन तुमने ऐसा नहीं किया। आज मैं तुम्हें श्राप देती हूं, जिस तरह कौरव वंश मेरी आंखों के सामने लड़कर समाप्त हो गया, उसी तरह तुम्हारा यदुवंश तुम्हारे सामने लड़कर खत्म हो जायेगा।"

और यही हुआ। युद्ध समाप्ति के 36 वर्ष बाद की घटना है। युद्ध के आदी यदुवंशी रोज शराब पीकर एक दूसरे का उपहास करते और लड़ते थे। एक कहता—तुमने निहत्थे लोगों को मार डाला। दूसरा कहता—तुमने पूजा कर रहे लोगों की हत्या कर दी। तीसरा कहता—तुमने रात के अंधेरे में सोये लोगों को जिंदा जला दिया। इस तरह सारे यदुवंशी आपस में लड़कर मर गये और श्री कृष्ण अपने परिवार को नहीं बचा पाये। इस घटना से दुखी बलराम तप करने पहाड़ पर चले गये। अकेले रह गये श्री कृष्ण ने अर्जुन को बुलवाया और यदुवंशी महिलाओं को हस्तिनापुर भेज दिया। किन्तु होनी की प्रबलता देखिये, अर्जुन के साथ जा रही महिलाओं को बीच रास्ते में भीलों ने लूट लिया। इसके बाद श्री कृष्ण एक पेड़ के नीचे बैठे हुए थे तभी एक बहेलिया ने उन्हें हिरण समझकर बाण चला दिया और उनका प्राणांत हो गया।

श्री राम से जुड़ी घटना भी अत्यंत प्रासंगिक है। राम वनवास से लौट चुके थे। राज्याभिषेक के बाद वे कुछ दिनों के लिए लक्ष्मण के साथ अपने ननिहाल गये हुए थे। वहीं बातों-बातों में लक्ष्मण श्री राम से कहते हैं, "भैया, आप तो सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान हैं। आप जानते थे कि आपको चौदह वर्ष का वनवास होगा और इस घटना से शोकित पिता का प्राणांत हो जायेगा, फिर आपने इसे रोका क्यों नहीं?"

जवाब में श्री राम ने कहा, "लक्ष्मण होनी को कोई नहीं रोक सकता। होनी होके रहती है।" सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ कहे जाने वाले भगवान राम का यह उत्तर हम सबके लिए विचारणीय है। गंभीरतापूर्वक विचार करने पर लगता है कि प्राकृतिक घटनाओं को छोड़कर मनुष्य के जीवन में घटने वाली घटनाओं का कारण प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से मनुष्य के द्वारा किया हुआ कर्म ही है। महाराज दशरथ ने स्वयं कैकेयी को वचन दिया था कि कैकेयी का पुत्र ही अयोध्या के राजसिंहासन का उत्तराधिकारी होगा। और यही वचन उनके प्राणांत का कारण बना। इसलिए यह बहुत जरूरी है कि इंसान बहुत सावधानीपूर्वक अपना जीवन जीये, क्योंकि एक बार कार्य करने के बाद हम होनी को रोक नहीं सकते। ❑

सुखी जीवन की चाबी

लेखक—गुरुवेन्द्र दास

दुनिया में जितने भी ताले होते हैं उन सभी तालों की चाबियां भी हुआ करती हैं। चाहे वह ताला आपके मकान, दुकान, खजाना, अटैची, कम्प्यूटर, लैपटाप, मोबाइल, आलमारी, मोटर-कार आदि किसी का भी क्यों न हो, सभी तालों की चाबियां होती हैं। बिना चाबी के कोई भी ताला नहीं खुल सकता। ताले कई तरह के होते हैं, तो उनकी चाबियां भी कई तरह की होती हैं। स्थूल ताला है तो स्थूल चाबी, इलेक्ट्रानिक ताला है तो इलेक्ट्रानिक चाबी। नंबरिंग ताला है तो वह नंबर से खुलेगा। फिंगर लाक फिंगर से, फेस लाक फेस की परिछांई से खुलेगा। यदि उपर्युक्त तालों को खोलने की दिशा, नंबर या तरीका गलत हो तो आप कितना भी प्रयास करें ताला खराब जरूर हो सकता है पर खुल नहीं सकता। ज्यादा हुआ तो ताला तोड़ना पड़ सकता है पर खुल नहीं सकता।

एक करोड़पति सज्जन ने बहुत बड़ा आलीशान बंगला बनवाया। उसने अपने उस मकान के दरवाजे, किचन, लाकर (तिजोरी) सभी जगह ताले के रूप में अपनी आवाज को रखा था। अर्थात ताला के पास जैसे वह जाता और कुछ बोलता वैसे ही ताला खुल जाता। दुर्भाग्य से एक कार एक्सीडेंट में उसका पूरा चेहरा खराब हो गया। डॉ. ने सर्जरी कर नकली चेहरा बनाया। ठीक होकर जब वह आदमी अपने बंगले में गया, पहले की तरह बोला तो आवाज चेंज होने की वजह से दरवाजा खुलने से रहा। सभी तालों का यही हाल। मजबूरन उस व्यक्ति को सारे ताले तोड़ने पड़े। जरा सोचिए जब फीजिकल ताले की यह कहानी है तो जीवन के ताले के बारे में क्या कहा जाये। प्रकृति की ओर से कहिये या परमात्मा की ओर से आपको अनमोल जीवन मिला हुआ है। इस अनमोल जीवन को पाकर यदि आप तनाव, अवसाद या डिप्रेशन में हैं, चिंता-शोक में डूबे हैं तो निश्चित समझिये आप अपने जीवन के ताले की चाबी का इस्तेमाल गलत ढंग से कर रहे हैं।

जानवरों व पक्षियों में यह समस्या नहीं है। कुछ अपवादों को छोड़कर किसी भी जानवर या पक्षी में यह नहीं देखा गया है कि अमुक जानवर या पक्षी अवसाद, डिप्रेशन, तनाव व शोक-चिंता के कारण बहुत दुखी होकर जहर खाकर, ट्रेन से कटकर, पंखे से लटककर या कुआं, बांध, नदी आदि में डूबकर आत्महत्या किया हो। किन्तु सभ्य व समझदार कहलाने वाले इंसानों में आजकल इसकी संख्या बढ़ती ही जा रही है। आइये इस प्रसंग में जीवन के ताले को खोलने के लिए कुछ चाबियों का इस्तेमाल करते हैं—1. कारण की खोज, 2. स्वीकार भाव, 3. संसार-शरीर तथा संबंधों की नश्वरता, 4. प्रारब्ध पर विश्वास, 5. निर्भयता, 6. दृष्टिकोण, (सकारात्मक सोच), 7. संकल्पशक्ति, 8. सहनशीलता, (धैर्य), 9. आत्मविश्वास, 10. आत्मसंयम, एवं 11. आत्मज्ञान (अंतर्मुखता)।

1. कारण की खोज—हर कार्य के पीछे कोई-न-कोई कारण अवश्य होता है। कारण चाहे स्थूल हो, चाहे सूक्ष्म पर होता अवश्य है। कहीं से बदबू आ रही है तो निश्चित है कहीं पर कोई चीज सड़ रही है तभी बदबू आ रही है। कहीं से खुशबू आ रही है तो निश्चित है कहीं पर फूल, इत्र या कोई खुशबूदायक चीज है जिससे खुशबू आ रही है। कहीं पर धुआं उठ रहा है तो निश्चित है कहीं पर आग लगी है तभी धुआं उठ रहा है। ऐसे ही जीवन में तनाव है, डिप्रेशन की स्थिति है, अवसाद है, चिंता-शोक है तो निश्चित समझिये मन किसी बात को लेकर बहुत ज्यादा उठा-पटक कर रहा है। जिसका समाधान न तो वह स्वयं कर पा रहा है न ही संकोचवश दूसरे के सामने व्यक्त कर पा रहा है। परिवार में पिता-पुत्र के बीच, सास-बहू के बीच, पति-

पत्नी के बीच, भाई-भाई के बीच, मालिक-नौकर के बीच, आफिस में बॉस-मातहत के बीच या ऐसे ही कहीं भी आदमी किसी से जब अपने प्रति प्रतिकूल व्यवहार पाता है और उस बात का दबाव जब बार-बार दिमाग पर पड़ता है तो आदमी का अपने आप पर से कन्ट्रोल कम होने लगता है। आदमी जब रात में सोता है तो चिंता की वजह से नींद नहीं आती, पूरी रात बीत जाती है करवट बदलते। और यही स्थिति तनाव, अवसाद, डिप्रेशन कहलाता है। नींद की गोलियां खानी पड़ती है तब कहीं जाकर थोड़ी-मोड़ी नींद आती है। यह जरूरी नहीं है कि कारण बड़ा ही हो। कभी-कभी तो कारण में कोई दम ही नहीं होता किंतु आदमी को बेदम करने के लिए वह कुछ कम भी नहीं होता। ऐसी स्थिति में यदि कारण दो के बीच या दो पक्ष का है तो दोनों पक्ष आपस में बैठकर सुलह कर लें, क्षमा कर दें या क्षमा मांग लें। संतों ने क्षमा को वीरों का भूषण कहा है। कबीर साहेब ने कहा है—"क्षमा बड़ेन को चाहिए, छोटन को उत्पात। क्या विष्णु की घट गई, जो भृगु ने मारी लात।"

एक बार एक गांव में दो पक्षों के बीच किसी बात को लेकर बड़ा झगड़ा हो गया। कोई झुकने को तैयार ही नहीं था। दोनों पक्ष अपने-अपने अहंकार में अड़े थे। बात थाने तक पहुंच गई। थाने से एसपी साहब एक सिपाही को लेकर झगड़ा स्थल पर पहुंचे। एसपी साहब मामले की तहकीकात कर दोनों पक्षों को समझा ही रहे थे कि एक युवक गुस्से में आकर एसपी साहब के गाल पर थूक दिया। उस युवक की ऐसी हरकत से साथ में गये सिपाही ने गुस्से में आकर रिवाल्वर निकाल लिया और बस शूट करने ही वाला था कि एसपी साहब ने इशारे से उस सिपाही को रोककर कहा कि तुम्हारे पास रूमाल है। सिपाही ने कहा—जी सर! एसपी साहब ने कहा—जरा अपना रूमाल दीजिए। सिपाही से रूमाल लेकर एसपी साहब ने अपने गाल की थूक को साफ करते हुए एक बहुत बड़ी बात कही—"जो काम एक रूमाल से हो सकता है उसके लिए रिवाल्वर उठाने की क्या जरूरत है।" इतना सुनते ही वह युवक एकदम पानी-पानी हो गया और एसपी साहब के पैरों पर गिर कर अपनी गलती के लिए क्षमा मांगने लगा और दोनों पक्ष आपस में सुलह कर लिये।

कलह से तो सुलह सुंदर रास्ता है। रात गई सो बात गई। कैलेंडर प्रायः हर घर में होता है। महीना बीतता है तो लोग कैलेन्डर का पन्ना पलट देते हैं, फिर उस पलटे हुए पन्ने को कभी पलटकर कोई नहीं देखता। पर पता नहीं लोग क्यों बीती बातों को दिल और दिमाग में रखकर उसे दिन-रात उलटते-पलटते रहते हैं। कैलेन्डर के पन्ने की तरह उन सारे कचड़े को भी दिल और दिमाग से निकाल फेंकना चाहिए। क्योंकि जब तक कारण खत्म नहीं होगा तब तक तनाव, डिप्रेशन, अवसाद खत्म नहीं हो सकता। कभी-कभी आदमी कारण को जानता भी है किंतु संकोचवश या भयवश दूसरों से कह नहीं पाता और यही स्थिति उसके लिए ज्यादा खतरनाक होती है। यह सच है कि हर बात हर किसी से कही नहीं जाती और हर किसी से कहना भी नहीं चाहिए। महाभारत में एक बड़ा अच्छा प्रसंग आता है। श्री कृष्ण ने नारद को तीन महत्त्वपूर्ण बातें कही हैं—1. अपनी गुप्त बातें उससे नहीं कहनी चाहिए जो सुहृद न हो, 2. सुहृद तो हो किंतु पंडित न हो, 3. सुहृद और पंडित तो हो किंतु जिसका मन अपने वश में न हो। क्योंकि ऐसे लोगों से अपनी गुप्त बात कहने से बात तो बनती नहीं है अपितु बिगड़ जाती है।

कुछ लोगों की आदत ही ऐसी होती है कि एक घर की बात दूसरे घर या एक आदमी की बात दूसरे आदमी को नमक-मिर्चा लगाकर बताने व झगड़ा-बैर कराने की। जब तक कारण समझ में न आ जाये तब तक किसी भी व्यक्ति की बात को अक्षरशः सच मानकर उस पर विश्वास नहीं कर लेना चाहिए। कभी-कभी कारण में कोई दम नहीं होता किंतु सामने वाला व्यक्ति उसे बढ़ा-चढ़ा कर बताता है और आदमी उसकी बातों

में विश्वास कर आपस में मनमुटाव कर लेता है। और जिंदगी भर तनाव में जीता है। सुखी जीवन की पहली शर्त है यदि मन में तनाव या अवसाद है तो उसके मूल कारण को दूर करने का प्रयास करें।

एक गांव में बिना जगत का एक कुआं था। पूरे गांव का गुजर-बसर उसी कुएं के पानी से होता था। एक दिन कुछ कुत्ते कुएं के पास में लड़ रहे थे। लड़ते-लड़ते एक कुत्ता कुआं में गिरकर मर गया। पहले तो गांव वालों को पता न था। जब देखा कि पानी से दुर्गंध आ रही है तो गांव वाले ओझा-बैगा बुलाकर झाड़-फूंक करवाये। उससे ठीक न हुआ तो कथा करवाने के लिए पंडितों के पास गये। पंडितों ने कहा—मामला बड़ा जटिल है। इस कुएं में पांच पवित्र नदियों का पानी लाकर डालो। गांव वालों ने वही किया, फिर भी ठीक न हुआ। एक दिन एक महात्मा उस गांव से होकर गुजर रहे थे तो यह देखकर कि गांव वाले बहुत परेशान, चिंतित तथा उदास बैठे हैं महात्मा ने उदासी व परेशानी का कारण पूछा तो गांव वालों ने बताया कि महाराज, हमारे गांव में मात्र एक ही कुआं है। उसी कुएं के पानी से पूरे गांव वालों का निर्वाह होता है। पता नहीं क्या हो गया है, कुछ दिनों से पानी से बड़ी दुर्गंध आ रही है, पीया नहीं जाता। बैगा-ओझा से झाड़-फूंक तथा पंडितों से कथा भी करवाकर थक गये। यहां तक कि पंडितों के बताये अनुसार पांच पवित्र नदियों का जल भी लाकर डाल दिया फिर भी ठीक नहीं हुआ, क्या करें। महात्मा ने कहा—चलो देखें, कहां है कुआं। जब जाकर देखे तो कुआं में कुत्ता मरा पड़ा है। महात्मा ने कहा—आप लोगों ने झाड़-फूंक करवाया, कथा करवाया लेकिन कुत्ता को नहीं निकाला। गांव वालों ने कहा—महाराज ऐसा तो किसी ने नहीं बताया। महात्मा ने कहा—जब तक कुत्ता को निकालोगे नहीं तब तक कुछ भी कर लो सारे प्रयास व्यर्थ ही होंगे। लोगों ने कुत्ता को बाहर निकाला और कुएं के पानी को साफ किया तो कुएं का पानी पूर्ववत निर्मल हो गया। इसलिए सर्वप्रथम मूल कारण के निवारण हुए बिना तनाव, अवसाद, चिंता, डिप्रेशन जैसी समस्या का समाधान नहीं हो सकता।

कभी-कभी आदमी सोचता है कारण तो ऐसा कुछ है नहीं, बिलकुल सामान्य-सी तो बात है फिर भी पता नहीं क्यों मन परेशान रहता है। सीधी-सी बात है आग की एक छोटी-सी चिंगारी भी गांव-नगर को भस्मसात करने के लिए काफी होती है। सर्प का एक छोटा-सा बच्चा भी जहरीला होता है, एक छोटा-सा बिच्छू भी जब डंक मारता है तो आदमी हायतोबा करने लगता है। एक छोटा-सा गिलास जिसमें आधा पानी भरा हो उसे यदि आपसे कहा जाये कि इसे दिन भर हाथ से ऊपर उठाये रहो तो उस आधे गिलास पानी को उठाये रहना आपको भारी पड़ सकता है। गिलास की बात तो छोड़िये आपसे यदि यह कहा जाये कि दिन भर अपने हाथ को ऊपर उठाये रहो तो कितना भारी लगेगा, आप हाथ ऊपर उठाये नहीं रह सकेंगे। फिर जिस कारण से चिंता, अवसाद, तनाव, डिप्रेशन की स्थिति पैदा हुई है उसे छोटा क्यों समझें।

2. स्वीकार भाव—टेंशन, डिप्रेशन, चिंता, तनाव, अवसाद से बचने का दूसरा तरीका है स्वीकार भाव। दुनिया में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं हुआ है जिसके जीवन में छोटी-बड़ी कोई भी गलती न हुई हो। कितना बड़ा-से-बड़ा महापुरुष हो उनसे भी उनके जीवनकाल में कोई-न-कोई छोटी-बड़ी गलती हुई होगी और उनको भी भला-बुरा कहने वाले हुए हैं। भला-बुरा कहने की बात ही नहीं कितने महापुरुषों को तो गाली, क्रास, फांसी तथा जहर तक नासमझी-वश दिया गया। यहां तक कि किसी-किसी को तो गोली से मारा गया फिर भी उन महापुरुषों ने अपनी सफाई में एक शब्द भी नहीं कहा, चुपचाप सब सह लिए। भूल होना बड़ी बात नहीं है, बड़ी बात है भूल को तूल देना। किसी ने बड़ा ही अच्छा कहा है—

"गिरते हैं शहसवार ही मैदाने जंग में,
वे तिफ्ल क्या गिरेंगे जो घुटनों के बल चले।"

अर्थात युद्ध के मैदान में कुशल घुड़सवार भी कभी गिर सकता है, वह बच्चा क्या गिरेगा जो चलना ही नहीं जानता अथवा जो घुटनों के बल चल रहा हो। कबीर साहेब ने कहा है—किसी को भला-बुरा कहने के पहले जरा अपने अंदर झांककर देख लेना चाहिए। जो व्यक्ति अपने अंदर झांककर देखता है उसे दूसरे में बुराई देखने का समय ही नहीं मिलेगा।"[1] किसी ने बड़ा सुन्दर कहा है—

झांक रहे सब इधर-उधर, अपने अंदर झांके कौन।
ढूंढ़ रहे औरों में कमियां, अपने भीतर ढूंढ़े कौन।
दुनिया सुधरे सब चिल्लाते, खुद को आज सुधारे कौन।
पर उपदेश कुशल बहुतेरे, खुद पर आज विचारे कौन।
हम सुधरेंगे जग सुधरेगा, इतनी सी बात स्वीकारे कौन।

जब भी कोई हम में गलती, दोष, बुराई बताता है और सचमुच में वे गलती, बुराई, दोष हमारे अंदर हैं तो हमें स्वीकार लेना चाहिए और यदि नहीं हैं तो नजरअंदाज कर देना चाहिए। सुधार का सबसे अच्छा रास्ता स्वीकार भाव है। यदि आप निर्दोष हैं तो कहने वाले को कहने दीजिए क्या फर्क पड़ता है। जब आदमी किसी को गाली देता है तो अपने को बड़ा शाहंशाह समझता है किंतु यह भूल जाता है जिसको गाली दी गई है जुबान उसके पास भी है और गलती मुझमें भी है। कबीर साहेब ने कहा है—

हस्ती चढ़िए ज्ञान की, सहज दुलिचा डारि।
स्वान रूप संसार है, भूंकन दे झखमार॥

हाथी जब गांव में आता है तो लोग उसे देखकर उसके आगे हाथ जोड़े खड़े होते हैं। वहीं दूसरी ओर भोंकने वाले कुत्ते उसके पीछे पड़े होते हैं। लेकिन हाथी न तो हाथ जोड़ने वालों की परवाह करता है और न ही भोंकने वाले कुत्ते की चिंता करता है। हाथी तो मस्त होकर अपनी चाल में चलता चला जाता है। इसी प्रकार संसार में कुछ लोग हाथ जोड़कर स्तुति-प्रार्थना करने वाले होते हैं तो कुछ लोग गाली-निंदा, आलोचना करने वाले भी होते हैं। किंतु समझदार, विवेकवान व्यक्ति दोनों स्थितियों में सम रहते हैं। एक बार श्री विशाल साहेब जी से किसी संत ने कहा—साहेब जी, अमुक आदमी आपकी निंदा-आलोचना कर रहे थे। सद्गुरु श्री विशाल साहेब जी ने कहा—अच्छा है, उन्हें हमारी निंदा-आलोचना करने में लाभ होता होगा। वैसे भी निंदा-आलोचना करने वाला हमारा हितचिंतक ही है, वह हमें आगाह करता है, सावधान करता है। कबीर साहेब ने तो ऐसे लोगों को अपने पास रखने को कहा है। निंदक आदमी को अपने पास उसके लिए कुटी (घर) बनाकर रखना चाहिए क्योंकि वह बिना साबुन-पानी के हमारे मन को, जीवन को निर्मल करता है।[2] बच्चा जब छोटा रहता है तो मां उसकी गंदगी को साबुन-पानी से धोकर साफ करती है किंतु निंदक व्यक्ति बिना साबुन-पानी के अपने मुंह से हमारी गंदगी को साफ करता है। सही मायने में कहा जाये तो निंदक हमारा अत्यंत उपकारी है वह चाहता है कि हम सदैव ठीक रहें।

एक लेखक ने तो कबीर साहेब से एक कदम आगे बढ़कर लिखा है कि सफाई के लिए गली-मुहल्ले में कुछ सुअर का होना भी जरूरी है। यदि कभी गलती हो जाये तो यह न सोचें कि अगर हम स्वीकार लें तो लोग क्या कहेंगे, समाज में बदनामी होगी, निंदा होगी। प्रायः बहुत-से लोग तो यही सोचकर अपनी गलती नहीं स्वीकार करते। जो व्यक्ति अपनी गलती नहीं स्वीकार करता भला कैसे विश्वास किया जाये कि वह आपको दिल से स्वीकार भी करता होगा। जो व्यक्ति अपना दोष नहीं स्वीकार करता उसके सुधार के सारे रास्ते बंद हो जाते हैं और एक दिन उसके वही दोष उनको मदहोश करके छोड़ता है। जो व्यक्ति अपना सुधार करना न चाहे दुनिया की कोई ताकत उसका सुधार-उद्धार नहीं

---

1. बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
   जो दिल खोजा आपना, मुझ सा बुरा न कोय॥

2. निंदक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।
   बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय॥

कर सकती। किसी ने बड़ा अच्छा कहा है—

"जिसे न हो उबरने की चाह, कौन उसे उबारे।
मझधार से निकालो, तो डूबेंगे किनारे॥"

इस बात को कबीर साहेब ने बड़े ही सहज ढंग से कहा है जो व्यक्ति जानबूझ कर छल-कपट, दुराचार, पापाचार, अत्याचार करता है उसके समान मूर्ख, अज्ञानी कोई नहीं है। ऐसे मूढ़, अज्ञानी का उद्धार कैसे होगा।

"जानि बूझि जो कपट करतु है, तेहि अस मंद न कोई।
कहहिं कबीर तेहि मूढ़ को, भला कौन विधि होई॥"

गोस्वामी जी लिखते हैं—जो व्यक्ति सचमुच में गहरी नींद में सोया हुआ हो उसे आसानी से जगाया जा सकता है किन्तु जो व्यक्ति जानबूझकर सोने की नकल कर रहा हो उसे जगाना बड़ा मुश्किल है। इसी प्रकार जो जानबूझकर कुमार्गगामी है उसे कैसे सुधारा जा सकता है। गोस्वामी जी कहते हैं—

"जानि सुनीति कुनीति रत, जागत ही रहे सोय।
उपदेशबो जगाइबो, तुलसी भलो न कोय।"

दो भाई थे, दोनों में परस्पर प्रगाढ़ प्रेम था। एक-दूसरे के बिना दोनों का रहना मुश्किल था। दोनों भाइयों के मधुर व्यवहार की सुकीर्ति बड़ी दूर-दूर तक फैली थी। एक दिन किसी बात को लेकर दोनों में विवाद हो गया। विवाद यहां तक बढ़ गया कि दोनों एक-दूसरे के साथ रहना तो क्या एक-दूसरे का मुख देखना भी पाप समझने लगे। बटवारे तक की नौबत आ गई। बटवारे में घर की सारी चल-अचल सम्पत्ति दो बराबर भागों में बांट दी गई। एक आदमकद शीशा रह गया बटवारा के लिए। शीशा तो एक ही था किन्तु उसके दावेदार दो थे। शीशा को तोड़ा भी नहीं जा सकता था। उस शीशे के लिए दोनों में वाकयुद्ध शुरू हो गया। एक कहता इसे मैं लूंगा, दूसरा कहता मैं लूंगा। दोनों का अहंकार टकराने लगा, दोनों में से कोई झुकने को तैयार नहीं था। दोनों सोचने लगे हम क्यों झुकें, झुकेंगे तो लोग क्या कहेंगे। एक लेखक ने लिखा है ''आज का सबसे बड़ा है रोग, क्या कहेंगे लोग।'' सच है अहंकार की कार में सवार आदमी का पार होना मुश्किल होता है। जब दोनों भाई झगड़ रहे थे उसी समय उस गांव का एक समझदार बुजुर्ग आ पहुंचा जो उन दोनों भाइयों के पिता के मित्र थे। मामले की स्थिति को समझा तो उन्होंने उस शीशे को उठाया और धड़ाम से जमीन पर पटक दिया, शीशा चूर-चूर हो गया। उस व्यक्ति ने कहा—मैं शीशे की टूट देख सकता हूं किन्तु इसको लेकर दोनों भाइयों की आपसी फूट नहीं देख सकता। याद रखिये, गलती अगर रूलाती है तो राहें भी दिखाती है।

एक बार इंदिरा गांधी से किसी पत्रकार ने पूछा—आप इस देश की ऐसी पहली महिला हैं जो प्रधानमंत्री जैसे सर्वोच्च पद पर बैठी हैं, इसके पीछे क्या राज है। आपने किससे प्रेरणा ली, कौन आपका गुरु है जिसकी वजह से आप इतने बड़े पद पर आज आसीन हैं? पत्रकार के प्रश्न को सुनकर इंदिरा गांधी ने बड़ी ही गंभीरता पूर्वक जवाब दिया—इस पद पर पहुंचने के लिए वैसे तो मेरे बहुत-से गुरु हैं लेकिन जहां तक मैं समझती हूं मेरा सबसे बड़ा गुरु मेरी अपनी गलती ही है। इस क्षेत्र में जब-जब भी मुझसे कोई गलती हुई तो मैंने उन गलतियों से सबक ली और पुनः वैसी गलती न कर आगे बढ़ती गई।

अगर कोई आपकी आलोचना, निंदा करता है तो विचलित होने की जरूरत नहीं है। निंदा तो जिंदा की ही होती है। मुरदा की तो लोग तारीफ ही करते हैं, चाहे उनका जीवन कितना ही खराब क्यों न रहा हो। मरने पर तो प्रायः सभी लोग उनके नाम के साथ स्वर्गीय लगाते ही हैं। आजतक किसी ने किसी के नाम के साथ नहीं लिखा नारकीय "फलॉ बाबू।" इसलिए निंदा से न डरें। हां, निंदनीय कार्य करने से जरूर डरें। लोग कपड़ा आदि पहनते हैं तो कई बार सोचते हैं कि कौन सा कपड़ा पहनूं जिससे मैं लोगों को अच्छा लगूं लेकिन यह कोई नहीं सोचता कौन सा ऐसा काम करूं जो लोगों को अच्छा लगे।

—क्रमशः

प्रतीकों में नहीं मनुष्य की सेवा में निहित है वास्तविक धर्म

लेखक—श्री सीताराम गुप्ता

समाचार पत्र में एक समाचार पढ़ा तो उर्दू शायर असरारुल हक मजाज साहब का एक शेर याद आ गया—'तिरे माथे पे ये आंचल बहुत ही खूब है लेकिन, तू इस आंचल से इक परचम बना लेती तो अच्छा था।' यदि इस शेर की तशरीह करने बैठें तो पूरी एक किताब लिखी जा सकती है। अब उस समाचार की बात करते हैं जिसे पढ़कर यह शेर याद आया। कनाडा में दो डॉक्टर भाइयों ने कोरोना के मरीजों का ठीक से इलाज करने के लिए अपनी दाढ़ियां कटवा लीं। दाढ़ी के साथ पूरे दिन मास्क पहनना और ठीक से मास्क पहनना संभव नहीं हो पा रहा था। मास्क ठीक से न पहनने से डॉक्टरों से मरीजों के और मरीजों से डॉक्टरों के संक्रमित होने का खतरा बढ़ जाता है इसमें संदेह नहीं। ऐसे में उनके पास यह नौकरी छोड़ देने का विकल्प था लेकिन इन विषम परिस्थितियों में मानवता की सेवा के लिए उन्होंने धर्म के एक प्रतीक दाढ़ी का त्याग करना उचित समझा।

किसी भी धर्म में प्रतीकों का बड़ा महत्त्व होता है। ऐसे समय में जब प्रायः सभी धर्मों के लोग प्रतीकों को लेकर अत्यंत आग्रही हों ऐसा निर्णय असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। एक अत्यंत सकारात्मक सोच एवं दृढ़ इच्छाशक्ति वाला व्यक्ति ही ऐसा निर्णय ले सकता है कोई साधारण व्यक्ति नहीं। उनका यह निर्णय धर्म-अध्यात्म में प्रतीकों के नाम पर अति संवेदनशीलता अथवा कठमुल्लेपन पर पुनर्मूल्यांकन का अवसर भी देता है। हर धर्म के व्यक्ति को हम प्रायः उसकी वेशभूषा अथवा उसके बाह्य स्वरूप से पहचानते हैं। इसी प्रकार से हर धर्म के कुछ धार्मिक चिह्न होते हैं जिन्हें प्रतीक कहा जाता है। इन्हें भी हम दूर से पहचान लेते हैं। प्रश्न उठता है कि यदि ये प्रतीक न हों तो क्या धर्म धर्म नहीं रहेगा? वह कुछ और हो जाएगा? इसके लिए धर्म के वास्तविक स्वरूप को जानना अनिवार्य है।

धर्म की विभिन्न परिभाषाएं मिलती हैं। उनका विश्लेषण करें तो एक बात स्पष्ट हो जाती है कि हर धर्म में कुछ अच्छी बातें होती हैं। धर्म उन्हीं सद्गुणों के योग को कहते हैं। धर्म वह तत्त्व है जो जीवन को सकारात्मकता व सात्त्विकता प्रदान करने में सक्षम होता है। वह समाज को सुचारू रूप से संचालित करता है। धर्म को जीवन में समाहित करने के लिए एक आचार-संहिता और कुछ प्रतीक चिह्न होते हैं। जब हम अपने धर्म के प्रतीकों को देखते हैं तो उससे जुड़े सद्गुण याद आ जाते हैं। यही है प्रतीकों का महत्त्व। प्रतीक साधन होते हैं साध्य नहीं। ये बाह्य तत्त्व होते हैं, आंतरिक नहीं। यदि किसी धर्म के मानने वाले धर्म में वर्णित अच्छी बातों का पालन नहीं करते तो उस धर्म के प्रतीक धारण करने का भी कोई महत्त्व अथवा औचित्य नहीं रह जाता। प्रतीकों को धारण करने अथवा उनकी पूजा करने मात्र से कोई धार्मिक नहीं हो जाता। मानवता की सेवा का भाव अवश्य किसी को धार्मिक बना देता है।

हर धर्म में सत्य, अहिंसा अथवा त्याग पर जोर दिया जाता है। यदि हम अपने धर्म अथवा प्रतीकों की रक्षा के लिए असत्य अथवा हिंसा का सहारा लेते हैं तो धर्म तो वहीं समाप्त हो जाता है। इसके विपरीत यदि हम प्रतीकों की परवाह किए बिना धर्म में वर्णित सद्गुणों अथवा सेवा को जीवन का उद्देश्य बना लेते हैं तो इससे बड़ा तो कोई धर्म ही नहीं हो सकता। प्रतीकों का अपमान करना किसी भी तरह से उचित नहीं कहा जा सकता लेकिन मानवता की सेवा के लिए उनका त्याग किया जा सकता है। त्याग भी हर धर्म का प्रमुख तत्त्व है। त्याग से तात्पर्य मात्र धर्म के लिए मर-मिट जाना ही नहीं होता अपितु मानवता की सेवा के लिए किसी भी प्रकार का त्याग धर्म ही है। विषम परिस्थितियों में ही नहीं सामान्य अवस्था

में भी प्रतीकों का त्याग धर्म का त्याग नहीं है। धर्म तो अच्छे गुणों का समूह होता है उन्हें त्यागा ही नहीं जा सकता।

आज दुनिया में बहुत से धर्म-संप्रदाय मौजूद हैं। क्या दुनिया में एक धर्म से काम नहीं चल सकता? चल सकता है लेकिन अनेक धर्म-संप्रदायों के मौजूद होने के कई कारण हैं। जब किसी धर्म में मूल अथवा आंतरिक तत्त्व कमजोर हो जाते हैं और प्रतीक उन पर हावी होने लगते हैं तो ऐसे में धर्म का विकास होने की अपेक्षा उसका ह्रास होने लगता है। ऐसे में कुछ लोगों के लिए उस धर्म की आचार-संहिता का पालन करना कठिन हो जाता है। अतः वे किसी दूसरे धर्म की शरण में चले जाते हैं अथवा नए रूप में अन्य नाम से नया धर्म ही स्थापित कर देते हैं। इस तरह से देश-काल के अनुसार भी धर्म बदल जाता है। लेकिन इस परिवर्तन में धर्म के मूल तत्त्व अर्थात उदात्त जीवन मूल्य कभी नहीं बदलने चाहिए।

विषम परिस्थितियों में अथवा किसी आपदा की स्थिति में किसी धर्म की अच्छी बातों के क्रियान्वयन का रूप बदल जाना उसके जीवंत होने का प्रमाण है। विषम परिस्थितियों में दिनचर्या अथवा जीवनचर्या में परिवर्तन स्वाभाविक है। यदि ऐसा करने की अनुमति नहीं मिलती है तो या तो उस तथाकथित धर्म का त्याग करना होगा या फिर धर्मपालन अथवा कर्त्तव्यपालन के रूप में जो कमी आएगी उसे स्वीकार करना होगा। इसीलिए आपद्धर्म का भी विधान है। विशेष परिस्थितियों में उसका पालन अनिवार्य है। वैसे तो हम पूजा-पाठ अथवा इबादत घर पर भी कर सकते हैं लेकिन इसके लिए हम प्रायः मंदिर, मस्जिद, चर्च अथवा गुरुद्वारों में ही जाते हैं।

जब हर जगह कोरोना वायरस के संक्रमण का खतरा है तो ऐसे में नियम-कानूनों की परवाह न करके सार्वजनिक प्रार्थना-स्थलों पर इकट्ठे होकर पूजा-पाठ अथवा इबादत करना न केवल घातक है अपितु अपराध भी है। धर्म में अपराध के लिए कोई स्थान नहीं होता। नियमों का पालन न करना अपराध ही नहीं अधर्म भी है। जब हम प्रतीकों से बंध जाते हैं तो किसी भी रूप में धर्म का पालन असंभव हो जाता है। धर्म का पालन वास्तव में कर्त्तव्य का पालन ही होता है। जब कुछ लोग मानवता की सेवा के लिए धर्म के बाह्य प्रतीकों का त्याग कर सकते हैं तो क्या हम अपनी स्वयं की सुरक्षा के लिए आवश्यक निर्देशों का पालन भी नहीं कर सकते? यदि हम ऐसा नहीं कर सकते तो हमारा धर्म और हम अत्यंत संकुचित जीवन दृष्टि से पीड़ित हैं। ❑

श्री निर्मल साहेब की वाणी

(1)

फ़क़ीरी का मज़ा जिसके, जिगर में आ गया होगा।
जीते ज़िन्दगी उसने, मुक्ति को पा गया होगा॥
करोड़ों बादशाह उसकी, शरण में आ गया होगा।
फ़कीरों की खुशामद कर, जमा पद पा गया होगा॥
अमीरी ठाट ऊपर का, देखने का तमाशा है।
चिन्ता साँपिनी उसको, निरन्तर खा गया होगा॥
खुशी के क़ैदख़ाने में, हुस्न की आग जलती है।
अनेकों ठोकरें उसने, विषयकृत खा गया होगा॥
नहीं वे तृप्त होते हैं, कभी भी भोग विषयों से।
महा दारिद्र्य वे दुख में, निर्मल पछता गया होगा॥

(2)

लगा के ज्ञान की बाज़ी, विषय को जीत लाऊँगा॥
बना के वेष योगी का, भस्म तन में रमाऊँगा।
पहिन गलबीच में अलफ़ी, अलख घर घर जगाऊँगा॥
रहूँगा बीच जंगल में, विषय धूनी जलाऊँगा।
करूँगा ख़ाक इस तन को, ध्यान गुरु का लगाऊँगा॥
करूँ चितवृत्ति को वश में, ज्ञान का मठ बनाऊँगा।
करूँगा सैन उस भीतर, स्वरूपस्थिति समाऊँगा॥

प्रवचन

मैं और मेरा स्वरूप

(परम पूज्यवर गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा दिनांक 30-5-2005 को कबीर संस्थान, सूरत में ध्यान शिविर के अवसर पर दिया गया प्रवचन।—प्रस्तुति श्री रामकेश्वर जी)

पूजनीय संत समाज, प्रिय सज्जनो तथा देवियो! देह से अपने को अलग समझना और फिर अध्यात्मरत हो जाना अध्यात्म की रीढ़ है। अध्यात्मरत हो जाने का मतलब है आत्मलीन हो जाना। गीता में कहा गया—" अध्यात्मरतः" अर्थात अध्यात्मरत हो जाओ। इसी को तथागत बुद्ध ने "अज्झत्तरतो"—कहा है। "अज्झत्तरतो" का अर्थ है अध्यात्मरतः यानी आत्मलीन हो। लोग कहते हैं कि बुद्ध आत्मा को नहीं मानते हैं लेकिन वे कहते हैं "अज्झत्तरतो", "शीतभूतम्" अर्थात अत्यन्त शीतल हो जाओ, अध्यात्मरत हो जाओ।

आत्मतत्त्व सद्गुरु कबीर का तो ज्वलन्त सिद्धान्त ही है। वे चैतन्य पक्ष के कट्टर पक्षधर हैं और दृढ़ता से कहते हैं कि जड़ से भिन्न चैतन्य है। उपनिषदों और वेदों के भी सभी ऋषि आत्म तत्त्व को स्वीकारते हैं और इस्लाम, ईसाइयत, जैन सभी सम्प्रदाय के लोग भी उसको मानते हैं। बुद्ध का नाम तो मैंने पहले ही इसलिए लिया कि लोग कहते हैं कि वे आत्मा नहीं मानते हैं लेकिन वे कहते हैं—"अज्झत्तरतोः" अर्थात अध्यात्मरत हो।

तथागत बुद्ध कहते हैं—"अत्ता हि अत्तनो नाथो अत्ता हि अत्तनो गतिः" आत्मा ही आत्मा का स्वामी है और आत्मा ही आत्मा का प्राप्तव्य है। "अत्ता हि अत्तना नाथो को हि नाथो परोसिया" आत्मा ही आत्मा का स्वामी है। उसका स्वामी दूसरा कौन हो सकता है।

आत्मा को देह से अलग समझ लेना और समझकर आत्मस्थ हो जाना अध्यात्म और परमार्थ की रीढ़ है। आत्मस्थ का मतलब है आत्मा में स्थित होना। प्राणी और पदार्थ चाहे जितना मिले, किसी का कुछ रहता नहीं। जैसे सावन-भादों का पानी चारों तरफ बहुत दिखाई दिया और सब बह गया वैसे जितनी चीजें हैं सब मिलकर छूट जाती हैं। सबसे निकट अपनी काया है और यह क्षण-क्षण बदलती है और देखते-देखते यह सदा के लिए लुप्त हो जाती है लेकिन "मैं" से मैं कभी अलग नहीं होता। इस पर वह कहानी याद करें—

एक राजा सपना देख रहा था कि मैं एक पर्वत की तराई में अकेले घूम रहा हूं। मेरे पास कुछ नहीं है और तीन दिन बीत गये हैं भोजन नहीं मिला है। बड़ी कठिनाई से वह चल पा रहा है। भूख से वह एकदम लथपथ है।

तराई में कुछ गरीब लोग बसते हैं। उनसे वह राजा भिक्षा मांगने जाता है। राजा को भिक्षा में कोई थोड़ा चावल और कोई थोड़ी दाल दे देता है। जब वह थोड़ा-सा चावल और थोड़ी-सी दाल को इकट्ठा कर पाता है तो उसको वह एक हंडी में रखकर खिचड़ी पकाता है।

खिचड़ी पक गयी है लेकिन अभी वह गरम है। राजा भूख के मारे बेताब है कि कब खाऊं। वह एक केला का पत्ता लाकर फैला देता है और उसपर खिचड़ी को ढाल देता है। उसका मन हो रहा है कि जल्दी खिचड़ी ठंडी हो और मैं खाऊं।

इतने में कहीं से दो भैंसे लड़ते-लड़ते उधर ही आ धमकते हैं। अब राजा भयभीत हो जाता है कि भैंसे लड़ते-लड़ते इधर न आ जायें। और सचमुच देखते-देखते भैंसे राजा के ऊपर टूट पड़ते हैं और खिचड़ी को रौंद देते हैं और राजा को खदेड़ते हैं। राजा अपना प्राण बचाकर भागता है। इतने में उसकी नींद खुल जाती है।

जब नींद खुलती है तो राजा देखता है कि मैं तो मखमली गद्दे पर पड़ा हूं। चारों तरफ भवन और पहरेदार हैं। वहां भैंसे कैसे आ गये और जो हजारों-लाखों को खिला सकता है वह भूखा कहां है और भीख कहां मांग रहा है। यह सब सोचकर वह चिंतित हो उठा। सबेरा हुआ और वह एक महात्मा के पास गया। और उनसे समाधान पाने की याचना की।

राजा ने महात्मा से कहा—"महाराज, मैं सपने में भिखारी था, भूखा था और तीन दिन के बाद भी खिचड़ी

खाने को नहीं पाया। भैंसों ने रौंद दिया और मुझको खदेड़ दिया। जब जगा तो देखा कि मैं राजा हूं। महाराज, मैं यह नहीं समझ पा रहा हूं कि यह सच है कि वह सच है।

महात्मा ने कहा कि जब तू सपना देखता था तब भूखा और पीड़ित था, तब क्या राज था? राजा ने कहा कि महाराज, तब राज नहीं था।

महात्मा ने पूछा—और तू।

राजा ने कहा—मैं तो था।

महात्मा ने फिर उससे पूछा—अब तो तू राजा है। अब क्या वह सपना है।

राजा ने कहा—नहीं है।

महात्मा ने पूछा—और तू?

राजा ने कहा—मैं तो हूं।

महात्मा ने समझाया कि राजन्! सपने में राज नहीं था इसलिए राज झूठा और जागृत अवस्था में वह सपना नहीं है इसलिए वह सपना भी झूठा। जागृत अवस्था की उपलब्धि झूठी है और सपने की परेशानी भी झूठी है लेकिन तू दोनों में था इसलिए तू ही सच है।

आप यहां हैं तो हैं और चन्द्रलोक चले जायें तो वहां भी रहेंगे। मंगल ग्रह पर भी चले जायें तो वहां भी रहेंगे। भारत में हैं तो भारत में हैं और भारत के बाहर देश में चले जायें तो वहां भी रहेंगे लेकिन भारत की चीज वहां नहीं रहेगी।

अपने-अपने घरों को छोड़कर लोग आये हैं। वहां-वहां की चीजें वहीं रह गयीं लेकिन आप अपने साथ हैं। अब यहां की चीजें हैं इनको भी आप यहीं छोड़कर चले जायेंगे। यहां की सभी चीजें भी यहीं रह जायेंगी लेकिन आप अपने साथ रहेंगे।

अपना आपा अपने साथ रहता है। आपा के दो अर्थ हैं—एक अर्थ है स्वत्व अर्थात अपनापन, स्वयं, आत्मा। और दूसरा अर्थ है—अहंकार। देह-गेहादि में 'मैं' और ''मेरा भाव'' अहंकार है। आपा का अर्थ जो अहंकार है वह गलत है लेकिन आपा का जो अर्थ आत्म अस्तित्व का बोध है यह विवेक ज्ञान है और यथार्थता है। अपना आपा अपने से कभी अलग नहीं होता है और अपने से अलग जो कुछ है वह अपना नहीं होता है। वह जुड़ता है-छुटता है, जुड़ता है-छुटता है।

तालाब में आप देखते होंगे कि घास के छोटे-छोटे टुकड़े तैरते रहते हैं। तैरते-तैरते एक टुकड़ा दूसरे टुकड़े से मिल जाता है। पानी के हिलोरे से वह उससे बिछुड़ जाता है फिर जाकर तीसरे कण से मिल जाता है। फिर छुटकर उससे भी अलग होता है और चौथे से मिल जाता है। ऐसे ही वह पांचवें से, छठवें से जा-जाकर मिलता है और छूटता है। वह मिलता है-छुटता है, मिलता है-छुटता है। किसी के साथ वह स्थिर नहीं रहता है। उसी प्रकार इस संसार-सागर में काल के हिलोरे से प्राणी एक दूसरे से मिलते हैं-छुटते हैं, मिलते हैं-छुटते हैं।

पति-पत्नी का सम्बन्ध बड़ा घनिष्ठ होता है और मालूम होता है कि ऐसे ही रहेगा लेकिन वह भी एक दिन सपना हो जाता है। पत्नी चली जाती है और पति बैठा रह जाता है या पति चला जाता है और पत्नी बैठी रहती है।

मन लगाये रखो तो लगाये रखो, जो चला गया वह लौटकर कहां आने वाला है। पति-पत्नी का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ लगता है किन्तु वह एक दिन ऐसा उड़ जाता है कि मालूम होता है कि हुआ ही नहीं था। दो मित्रों का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ लगता है, लेकिन जीवन रहते-रहते दोनों उदास हो जाते हैं और दोनों दोनों से मिलने की इच्छा ही नहीं करते हैं। यह संसार ऐसे ही है।

जहां लगता है कि हमारी बड़ी घनिष्ठता है वह खो जाता है। अभी कुछ दिन पहले मैं नड़ियाद में था और वहां मैं जिस आश्रम में था, जिस कमरे में था वह सब घनिष्ठ लगता था किन्तु अब वह खो गया। अभी मैं ऊपर के कमरे में था और वह बड़ा घनिष्ठ लगता था लेकिन वह अब खो गया। अब मैं यहां हूं। अब यह जगह बड़ी घनिष्ठ लगती है लेकिन कुछ देर के बाद यह भी खो जायेगी। दृश्य क्षण-क्षण आते और जाते हैं लेकिन द्रष्टा द्रष्टा से अलग नहीं होता है। चेतन द्रष्टा है और जड़ दृश्य। दृश्य का मतलब है दिखाई देनेवाला और द्रष्टा का मतलब है जो देखे और जाने। यह जीव, यह चेतन, यह आत्मा द्रष्टा है और जड़ का सारा पसारा दृश्य है। दृश्य में यह रीझता और खीझता है। यही इसकी दुर्बलता और अज्ञान है।

पहली बात है अज्ञान। जहां अनुकूल रहता है और जिसको अनुकूल देखता है उसी में अज्ञानवश यह चिपक जाता है और जहां प्रतिकूल मिलता है वहां बिदक जाता है। बिदक जाना यानी भड़क जाना, दूर हो जाना है। तो रीझना और खीझना जीवनभर यही चलता है और क्या पाता है।

उपलब्धियां हुईं और रीझ गया। पद मिला, प्रतिष्ठा मिली, धन मिला, पुत्र मिला, प्रचार-प्रसार मिला, बढ़ावा मिला उनमें यह रीझ गया। जब उनमें कमी आ गयी तो खीझ गया। इसप्रकार रीझते-खीझते एक दिन सबकुछ छोड़ दिया। जिसमें रीझा वह चीज भी नहीं रही और जिसमें खीझा वह चीज भी न रही। कुछ नहीं रहा। जीव के साथ कुछ रहता नहीं है। यह अकेला है। यह पहले अकेला था, आज भी अकेला है और आगे भी अकेला रहेगा। जितना झमेला है सब थोड़े दिन का है। इस बात को समझना है और अपने को कहीं विचलित नहीं करना है। यही कल्याण की अवस्था है।

कल्याण, शांति, निर्वाण, मोक्ष, परमानन्द और परमात्मा की प्राप्ति, राम, ब्रह्म, खुदा और गॉड की प्राप्ति इत्यादि सब शब्द हैं। इन सभी शब्दों का केवल एक ही अर्थ है कि अपना मन सब तरफ से लौटकर अपने में समाहित हो जाये और अपने आप में विश्राम पा जाये। यही जीवन का परम फल है।

इसके लिए यह बोध जरूरी है कि मैं देह नहीं हूं। देह तो मिट्टी का लौंदा है, मिट्टी का पिण्ड है। मैं शुद्ध चेतन हूं, अजर-अमर, निर्मल और निर्विकार हूं। सब कुछ क्षणभंगुर है। जो कुछ मुझे मिलता है अनात्म है, अनित्य है, असुख है। जो मिलता है वह आत्मा नहीं है, अनात्म है और अनित्य है। वह सुखद नहीं है। जो मिलता है वह क्षणिक है। वह बह जाने वाला है—"कहहिं कबीर ते ऊबरे जाहि न मोह समाय।" साहेब कहते हैं कि जिसके मन में मोह नहीं समाता है वही उबरता है। यह सबके लिए मानो औषध है।

लोग कह सकते हैं कि यह तो विरक्तों के लिए ही उपदेश है। लेकिन यह उपदेश केवल विरक्तों के लिए ही नहीं किंतु मनुष्य मात्र के लिए है। मनुष्य दुखी है क्योंकि उसे जो प्राप्त है उसमें उसको खिन्नता है। उसके मन में जैसा चाहिए वैसा नहीं मिलता है। जो हमें मिलता है वह अच्छा नहीं लगता है और जो अच्छा लगता है वह रुकता नहीं, भाग जाता है। इससे आदमी खिन्न है, दुखी है और यह दुख कभी खत्म नहीं होगा। यह दुख तब खत्म होगा जब आदमी अनासक्त होगा।

संसार में अनुकूल मिलेगा, प्रतिकूल मिलेगा। अनुकूल में आदमी रीझेगा, प्रतिकूल में खीझेगा। इसी झमेला में यह अनादि काल से बेवकूफ बना आ रहा है और आगे भी वह बेवकूफ बना रहेगा। आदमी बड़ा पढ़ा-लिखा है, बड़ा अफसर है, बड़ा गुरु है, बड़ा महंत है लेकिन अनासक्ति का यह काम अगर नहीं करता है तो पूरा का पूरा बेवकूफ है। समझ और विवेक यही है कि अपने मन के द्वन्द्वों से ऊपर उठे। अनुकूल मिलता है, प्रतिकूल मिलता है, संयोग होता है, वियोग होता है, प्रशंसा मिलती है और निंदा भी मिलती है। शरीर में रोग आ जाता है कष्ट हो जाता है। रोग दूर हो जाता है तो निरोगता आ जाती है।

हम जिन चीजों के बीच हैं कणों के जोड़ हैं और कणों के जोड़ स्थिर रह नहीं सकते हैं यह पक्का है। सारा संगठन इलेक्ट्रान, प्रोट्रान या कहो कि अणु-परमाणु के कणों का जोड़ है। सारा निर्मित पदार्थ—जो कुछ भी दिखाई देता है—कणों का जोड़ है और इस जोड़ का इत्मीनान क्या है। यह टुटेगा, बिखरेगा क्योंकि यही इसका स्वभाव है।

"गुणानां परमं रूपं न दृष्टिपथमृच्छति।
यत्तु दृष्टिपथं प्राप्तं तन्मायेव सुतुच्छकम्॥

यह कपिल महाराज का मंत्र माना जाता है। व्यास ने अपने योगदर्शन के भाष्य में इसको उद्धृत किया है।

"गुणानां परमं रूपम्"—गुणों के परम रूप, जड़ तत्त्वों के अंतिम रूप सूक्ष्म स्वरूप, "न दृष्टि पथं ऋच्छति"—दृष्टि पथ में वे दिखते नहीं हैं। जो पदार्थों के सूक्ष्म स्वरूप हैं वे आंखों से दिखाई नहीं देते हैं। किसी भी पदार्थ को तोड़ते जाइये-तोड़ते जाइये तो अंतिम परमाणु इतना सूक्ष्म होता है कि वह आंख से दिखाई नहीं देता है। आज तक वैज्ञानिक लोग परमाणु को यंत्र से भी नहीं देख सके हैं। इसलिए यह कथन कितना प्रामाणिक है—"गुणानां परमं रूपं न दृष्टिपथमृच्छति।" पदार्थों के सूक्ष्म स्वरूप आंखों से नहीं दिखाई देते हैं।

"यत्तु दृष्टिपथं प्राप्तम्" परन्तु, जो दृष्टि पथ से प्राप्त होते हैं, आंखों से दिखाई देते हैं—"तन्मायेव सुतुच्छकम्" वह माया के समान अत्यन्त तुच्छ हैं। यह कथन सारे मोह पर एकदम कुठाराघात ही है। जो सच है वह दिखाई नहीं देता है और जो दिखाई देता है वह सच नहीं झूठ है। फिर किसमें मोहित हो रहे हो—"केहि को देखत, केहिको परसत बिना पदारथ काया है।" श्री विशाल साहेब ने कहा है कि किसको देखकर मुग्ध हो रहे हो, किसका स्पर्श करके मुग्ध हो रहे हो। काया तो बिना पदार्थ के है। काया नाम की चीज नहीं है। काया कोई स्वतः वस्तु नहीं है। यह तो कणों का जोड़ है। फिर किसको देखकर मोह रहे हो।

इस प्रकार जब विचारों की गहराई में साधक उतरता है तब उसका मोह मिटता है और यह काम लोग नहीं करते हैं। एकान्त चिंतन बिना यह काम नहीं होगा। रोज-रोज जब अकेले में बैठो, सोचो कि सत्य क्या है, तथ्य क्या है और उसी में दिमाग घूमे तब जाकर धीरे-धीरे मन के गर्दा-गुब्बार छटेंगे और तभी विश्राम मिलेगा।

आदमी तो सुबह से शाम तक घुड़दौड़ में लगा है। वह कमा रहा है, और उन्नति कर रहा है। कोई एक काम आदमी ने किया उसमें पैसा बढ़ा फिर दूसरा काम कर लिया, फिर तीसरा काम कर लिया, फिर चौथा फिर पांचवां काम करता जाता है और इसप्रकार एक-एक बढ़ाते-बढ़ाते हुए बहुत बढ़ा लेता है। इसी को वह उन्नति मान रहा है। लेकिन वह उन्नति क्या है वह तो अगर विवेक न हो तो परेशानी का घर है।

एक सज्जन बहुत गरीबी में थे। वे थोड़ा-थोड़ा पैसा इकट्ठा करने लगे और पैसा इकट्ठा करते-करते कुछ पैसा इकट्ठा हो गया तो उन्होंने एक छोटी फैक्टरी कायम कर ली। उसमें पैसा बढ़ा तो फिर एक दूसरी फैक्टरी कायम कर ली। इसप्रकार करते-करते कई फैक्टरियां उन्होंने कायम कर ली। अब उन फैक्टरियों का पतन न हो जाये इसी में वे उलझे हैं, जीवन बरबाद हो रहा है। अब उनको नींद नहीं आती है, खाना नहीं पचता है। जागना तो जागना है सोना भी जागने की तरह रहता है। गहरी नींद आती नहीं है। उनका जीवन पूरा नरक हो गया। एक दिन यह जीव भंवरा भन्न से उड़ जायेगा तब उसके साथ क्या रह जायेगा। नरक भोगते-भोगते मर गये। इसलिए व्यवहार भी बड़ी सावधानी से करना चाहिए।

धन किसलिए चाहिए? सुख के लिए। किन्तु धन अगर दुख का कारण बन गया तो वह धन किस काम का! इसलिए ऐसा काम करो कि परिणाम दुखदायी न हो। कमाओ खाने के लिए, धनी बनने के लिए नहीं। धनी बनने के लिए कमाओगे तो दुख पाओगे। गुजर-बसर करने के लिए कमाओ और सुख से रहो। कमाते-कमाते रात-दिन छुट्टी नहीं है तब आत्मचिंतन कब करोगे। और अगर आत्मचिंतन नहीं कर पाओगे तो मन का गर्दा-गुब्बार कैसे कटेगा और गर्दा-गुब्बार नहीं कटेगा तो शांति कैसे मिलेगी।

कितने महात्मा प्रचार के नशे में घूमते रहते हैं। वे दुनिया भर को जगा देना चाहते हैं। उनके जीवन में आत्मचिंतन नहीं है, एकान्त क्षण नहीं है, साधना नहीं है, केवल वे सबको जगा देना चाहते हैं। अपना तो वे सो रहे हैं और सबको जगाने के लिए दौड़ रहे हैं। ऐसे लोग भी हाय-हाय करके मरते हैं। प्रकृति की तरफ से गृहस्थ और विरक्त किसी के लिए क्षमा नहीं है। प्रकृति का विधान सब पर समान रूप से लागू है। जो करो सो भरो। इसलिए बड़ी सावधानी से जीवन बिताना चाहिए।

अकेले में बैठो, सोचो, मैं क्या कर रहा हूं। मेरा क्या है। इस संसार में कौन वस्तु मेरी है। अपने आप को देह से, मन से और पूरे संसार से अलग कर लो। विवेक से समझो कि मेरा कोई नहीं है। यह सब दृश्य है सब आता-जाता है और मैं तो निराला हूं, शुद्ध हूं निर्मल हूं। यह आत्मभाव अध्यात्म की रीढ़ है। अपने आप को सबसे अलग समझना यह आत्मचिंतन महान साधना है।

मैंने शुरू में कहा था कि आत्मा और अनात्मा का विवेक, देह से अपने स्वरूप को भिन्न समझकर स्थित होने का अभ्यास अध्यात्म की रीढ़ है। पहले यह समझ होनी चाहिए कि मैं देह नहीं हूं। देह जड़ है, परिवर्तनशील है और विकारी है। मैं तो शुद्ध, निर्मल, कल्याणस्वरूप, परमानन्दमय, परम सुखस्वरूप हूं। मेरे में दुख नाम की चीज है ही नहीं। सारा दुख सम्बन्ध में है, मान-मानकर है। अहंकार-ममकार छोड़ दो तो अपने में पूर्ण विश्राम हो जायेगा। इस बोध के आधार

पर जीवन बिताओ तो आप अपने आप सावधान रहोगे। तब धन के चक्कर में नहीं पड़ोगे। तब गुजर के लिए धन कमाओगे। वही विष है वही अमृत है। अन्न अमृत है और ज्यादा खा लो तो जहर है।

व्यवहार न करो तो कैसे चलेगा। जीवन गुजर की चीजें तो चाहिए। अन्न-पानी, कपड़ा-लत्ता, घर-द्वार, रुपया-पैसा गुजर के लिए है। व्यवहार में रुपया खास चीज है। रुपये को न तो बिछाया जाता है और न ओढ़ा जाता है और न खाया जाता है लेकिन रुपया एक ऐसा माना हुआ पदार्थ है कि जिससे कहीं भी काम चल जाता है।

आप अन्न-पानी बांधे-बांधे घूमें, तो कहां तक घूमेंगे। रुपया जेब में रख लिये और कहीं भी चले गये। रुपये दे दिये, अन्न मिल गया, बिस्तर मिल गया, मकान मिल गया रह लिये और रहकर चल दिये। अब अपना मकान बांधकर और अन्न बांधकर कहां जाओगे। इसलिए दुनिया की सरकारों ने रुपये को बनाया है।

सबको रुपये की जरूरत है। एक साधु भी अगर बस में बैठे तो कण्डक्टर उससे भी टिकट मांगेगा। अगर उसके पास पैसे नहीं हैं तो उसको वह उतार देगा। इसलिए अन्न-पानी, रुपये-पैसे सब देह में लगते हैं। इसलिए मेहनत करना और रुपये कमाना ठीक है लेकिन उसकी एक मर्यादा होनी चाहिए।

कहीं कमाने की हविश में पड़ गये। भयंकर तृष्णा सवार हो गयी। अब बैठने की भी फुरसत नहीं है। आत्मचिंतन के लिए अवसर नहीं है तो यह उलटा हो गया। खाना चाहिए। खाये बिना नहीं चल सकता लेकिन इतना खा लिये कि अब आराम से लेट नहीं सकते हो। बैठना तो बड़ा मुश्किल है तब यह कौन-सी समझदारी है। विवेक से जीयो, अनासक्त होकर जीयो और विवेक से व्यवहार करो।

रोज एक बार, दो बार, तीन बार, कुछ-कुछ समय के लिए जबतक अपने को अकेला न करोगे तबतक शांति न पाओगे। इसलिए अपने को अकेला कर लो और अकेले में सोचो कि मैं कौन हूं और मेरा क्या है तब सब दुख दूर हो जायेगा, सब भ्रांतियां कट जायेंगी। यह अभ्यास जो निरन्तर करेगा उसकी दिव्य दृष्टि हो जायेगी। उसका दुख दूर हो जायेगा।

वह इस दुखभरे संसार में सुख से जीयेगा। कीचड़ और पानी में कमल गगन-मगन रहते हैं। खिले हुए कमल कितने सुन्दर और शोभायमान लगते हैं लेकिन उनकी जड़ कीचड़ और पानी में होती है। इसी प्रकार इस कीचड़-पानी भरे संसार में साधु या गृहस्थ कोई भी बोधवान होकर गगन-मगन और प्रसन्न रहता है। इस हल्ला-गुल्ला, कीचड़-पानी और गर्दा-गुब्बार से भरे संसार में विवेकवान सुखी रहता है। इस राग-द्वेष और कलह-कल्पना भरे संसार में जहां मृत्यु होती है, एक्सीडेंट होता है, बधाइयां आती हैं, निंदा आती हैं विवेकवान निर्मल, आनन्दमय और सुखी रहता है। यही सच्चा सुख है।

इसी सच्चे सुख का प्रशिक्षण देने के लिए ध्यान शिविर का आयोजन होता है। इन शिविरों के आयोजन का उद्देश्य यही है कि आपमें ऐसी बुद्धि उत्पन्न हो कि आप कहीं दुखी न हों। आपके पास जो बुद्धि है उस बुद्धि में इस यथार्थता का स्थान होना चाहिए।

आपके दिमाग में तो स्थान इसका है कि ज्यादा भोग मिलेगा तो सुख मिलेगा। पति है तो उसके दिमाग में है कि सुन्दरी पत्नी मिलेगी तो सुख मिलेगा। पत्नी के दिमाग में है कि सुन्दर पति मिलेगा तो सुख मिलेगा। लोगों को है कि ज्यादा पैसा मिलेगा तो सुख मिलेगा। कोई हमारी बड़ाई करेगा तो सुख मिलेगा लेकिन यह सब भ्रम है।

क्या मिले और क्या न मिले इसकी चिंता नहीं, गुजर-बसर होना चाहिए और मन निर्मल होना चाहिए। अनासक्त मन होना चाहिए तब सच्चा सुख मिलेगा और यह बात एकान्त चिंतन और ध्यान के बिना सम्भव नहीं है। इसलिए सब लोग रोज एकान्त के लिए समय निकालो। अकेले में बैठो और अपने बारे में सोचो, चिंतन करो और ध्यान करो। यही काम करो।

इन सब बातों का अर्थ है कि अपने को देह से अलग समझना। सब परिवर्तन देह में है, मेरे में नहीं है। सारा सुख-दुख और द्वन्द्व दैहिक है, आत्मिक नहीं है। आत्मा तो बिलकुल निर्मल है। अपनी निर्मलता समझकर उसकी दशा में टिकने का अभ्यास करो। इन्हीं शब्दों के साथ मैं अब अपनी वाणी को विराम देता हूं।

❑